43

तृतीय बौद्ध संगीति की आवश्यकता और बौद्ध संघ में आये मतभेदों को रोकने के लिए मोर्य सम्राट अशोक द्वारा किये गये प्रयास

*राजुल अग्रवाल

साहित्यक परम्परानुसार वैशाली में आयोजित द्वितीय बौद्ध संगीति (383 ई.पू.) के पूर्व संघ में दस बातों को लेकर मतभेद था । यथा–भिक्षुओं को अपने पास नमक रखना चाहिये कि नही, भोजन के बाद छांछ पीना चाहिये कि नहीं आदि। इन मतभेदों मे एक ऐसा ही मतभेद था जो गम्भीर था और वह था कि संघ को दान में सोना चाँदी स्वीकार करना चाहिये कि नहीं।[1] जो लोग इन दस बातों में परिवर्तन चाहतें थे वे महासांघिक (सर्वस्तवादी) पूर्वी भिक्षुक या वज्जिपुत्र कहलाये और जो इस परिर्वतन के विरोधी थे स्थविर, थेरवादी व पश्चिमी भिक्षु कहलाये।[2] एक ओर महासांघिंक थे जो दोपहर के बाद भोजन ग्रहण करने पर भी यही कहतें थे कि उन्होंने ''विनय'' के नियमों का उल्लंघन नही किया हैं। वहीं दूसरी ओर स्थविर थे जो उनके इस दावें को स्वीकार नहीं करते थें ओर इसें ''विनय'' के प्रतिकूल मानतें थें। वैशाली की सगीति में इन मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया था, परन्तु यें पूरी तरह समाप्त नहीं हो पायें थे और इसका अन्तिम दुखःद निष्कर्ष यह रहा कि संघ में यह मतभेद खुलकर सामने आने लगे और कालान्तर में यह विभेद और भी तीव्र हो गये।[3]

यहाँ यह कहना गलत होगा कि दोनों सम्प्रदायों के बीच यह विभेद सैद्धांतिक था क्योकि दोनों ही सम्प्रदाय के लोग बौद्ध धर्म में आस्था व विश्वास रखते थे, बौद्ध नियमों को मानते थे, भगवान बुद्ध को ही अपना शास्ता मानते थे और निर्वाण को ही अपना चरम लक्ष्य मानते थे, तों अन्तर कहाँ था। पर यदि हम सूक्ष्मता से समीक्षा करे तो ऐसा लगता हैं कि ये दस वस्तु विषयक आदि मतभेद सैद्धांतिक कम थे और भौगोलिक तथा भाषा विषयक अधिक थे। इनकी प्रवलता इसी से देखी जा सकती हैं की ये आज तक सुलझ नहीं पाये। एक और स्थविर थे जो भगवान बुद्ध के आदेश से एक कदम भी पीछे नहीं

नेट जे.आर.एफ. शोधार्थी रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर मध्यप्रदेश

हटना चाहतें थें दूसरी तरफ महासांघिक थे जिनको समय व परिस्थिति के अनुसार बौद्ध नियमों में परिवर्तन करना सही लगता था। उदाहरण के लिए जैसे प्रारम्भ से ही बौद्धों का ब्राह्मण धर्म के सिद्धांतों से प्रत्यक्ष टकराव था। ब्राह्मणों को उत्तर देने के लिए बौद्धों को भी संस्कृत भाषा की जो कि तत्कालीन आभिजात्यकुलीन जनता की व्यवहार भाषा थी, गम्भीर आवश्यकता आ पड़ी। साधारण जन भाषा पालि में ब्राह्मणों की तार्किक युक्तियों का उत्तर देने में बौद्ध अपने को दुर्बल पा रहें थें जबकि भगवान बुद्ध का धर्मोपदेश की भाषा के विषय में स्पष्ट आदेश था कि ''अनुजनामि भिक्खवे, सकाय निरूत्तिया परियापुणिंतु ति'' अर्थात भिक्षुओं मैं तुम्हें धर्मोपदेश के प्रवचन हेतु अपनी जन भाषा के व्यवहार हेतु अनुज्ञा देता हूँ। इस प्रकार दोनों ही सम्प्रदायों का उद्देश्य तो एक ही था अर्थात् ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों को दूर करना, परन्तु दोनों के बीच भाषाविषयक मतभेद आ चुका था। शायद ऐसे कुछ ओर कारण भी रहे होगें जिनके मतभेद उस समय तक नहीं सुलझ पाऐ ओर बौद्ध धर्म में संघ भेद बढ़ता ही चला गया। सम्राट अशोक के शासन काल में यह विभेद अत्यधिक बढ़ चुका था।[4]

मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल में बौद्ध संघ में संकट की स्थिति पैदा हो चुकी थी क्योंकि बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण मिलने के कारण उस समय संघ को राजा एंव नागरिकों (सामान्य जनता) की तरफ से भी बहुत अधिक लाभ एवं सत्कार मिलने लगा जिसके कारण अन्य धर्मानुयायी उदाहरण वैष्णव, शैव, जैन आदि तीर्थिक लाभ सत्कार प्राप्त करने हेतु, संघ में भिक्षु बन प्रवेश कर चुके थे।[5] ये नवीन भिक्षु चोरी से काषाय वस्त्र धारण कर बौद्ध धर्म के नाम पर अपने–अपने धर्मो का प्रचार कर रहें थे। संघ में फूट डालने के लिए अपनी ही बातें अपनी पद्धति से कहतें व करतें थे। उन बातों को बौद्ध मत में ऐसा कहा गया हैं आदि कहकर अपने अपने धर्मों को चलातें थें। संक्षेप में ये अन्य धर्माविलंबी जो धर्म विनय से हीन, सिरंमुड, चीवर पहन व भिक्षु पात्र ले, धर्मसंघ में पेट पालने ओर मतभेद पैदा करने के लिए ही आ मिले थे।[6]

बौद्ध साहित्य थेरगाथा में कहा गया हैं कि ''जो भिक्षु मुण्डितषिर एवं संघाटी धारण कर (प्रवृजित हो कर) भी अपने लिए आवश्यकता से अधिक अत्र, पान, चीवर एवं शयनासन का लाभ खोजता हैं, लोक में उसके बहुत से शत्रु हो जाते है।[7]

बौद्ध संघ में भी इस समय इन अतिरिक्त नवीन भिक्षुओं के कारण तनाव की स्थिति प्रारम्भ हो चुकी थी। इन भिक्षुओं के आचरण से सम्राट अशोक ही नहीं बल्कि सच्चे भिक्षुओं को भी कष्ट होने लगा। संघ में यह व्यवस्था सात वर्षो तक जारी रही, जिसके परिणामस्वरूप पाटलिपुत्र के अशोकाराम विहार में ''उपोसथ'' पाठ की परम्परा भी छिन्न भिन्न हो गयी। इन सात वर्षो में संघ में उपोसथ कार्य भी ना हो सका। साथ ही आर्य, सदाचारी, पुण्यआत्मा, विद्वान व्यक्तियों ने भी इन उपोसथों में आना बन्द कर दिया।[8] उपोसथ से तात्पर्य एक विषेष अवसर से था जब भिक्षु धर्मवार्ता के लिए एकत्र होकर धार्मिक चर्चा करतें थें। यह एक अच्छी परम्परा थी जिसे राजगृह के शासक बिम्बिसार के अनुरोध पर

महात्मा बुद्ध ने भी पसन्द किया था। यह धार्मिक चर्चा चुतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन की जाती थी। अतः वह उनके मौन का दिन न होकर धार्मिक प्रवचन का दिन था इसी धार्मिक प्रवचन को प्रातिमोक्ष कहा गया।[9]

बौद्ध संघ में आये इन विभेदों से व्याकुल होकर अशोक ने एक राजकीय आदेश पारित कर उपोसथ कराने का निर्णय लिया जिसके लिए उन्होंने एक अमात्य को आदेश दिया कि अशोकाराम जाकर बौद्ध भिक्षुओं से उपोसथ विधि को सम्पत्र कराया जाय। अमात्य द्वारा अशोक के आदेश का वास्तविक भाव न समझते हुए उसने आशोकाराम में जाकर बौद्ध भिक्षुओं को डराना धमकाना प्रारम्भ कर दिया और अन्त में उपोसथ न चाहने वाले कुछ भिक्षुओं के सिरों को काट डाला।[10]

घटना की सूचना प्राप्त होतें ही दुखी होकर अशोक अशोकाराम पहुँचे जहाँ उन्होनें भिक्षुओं से इन हत्याओं का वास्तविक दोषी कौन हैं? प्रश्न किया। प्रश्न पूछनें पर किसी भिक्षु ने अशोक को ही इन हत्याओं के लिए दोषी ठहराया तो किसी ने नहीं। इस प्रकार यहाँ भी इन भिक्षुओं के दो मत हो गये। सम्राट अशोक को इन भिक्षुओं सें कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त न हो सकने के कारण अन्त में स्थविर बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा बौद्ध संघ के प्रमुख स्थविर मोंग्गलिपुप्त तिष्य को बुलाने का निर्णय लिया गया।[11] तिष्य के आगमन पर अशोक ने अपने सम्पूर्ण प्रश्नों को उनके समक्ष रखा।

थेरगाथा में भी कहा गया हैं कि साधना पूर्ण किये स्थविरों के दर्शन मंगलमय होतें हैं। इनके दर्शन से जिज्ञासु के धर्म विषयक सभी सन्देह नश्ट हो जाते हैं। इनके दर्शन मुर्ख जिज्ञासु को भी पण्डित बना देतें हैं। [12] यह उसी प्रकार साधक की सहायता करते हैं। ''जैसे घनघोर रात्रि में प्रज्ज्वलित अग्नि किसी के मार्ग दर्शन में सहायक होती है।''[13]

इस प्रकार तिष्य ने भी अशोक के सभी प्रश्नों के उत्तर देतें हुए उनके सभी सन्देह को दूर किया। अशोक को उन भिक्षुओं की हत्या का दोषी न मानते हुए एक चमत्कार दिखाया।[14] उन्होंनें अपनी बात की पुष्टि के लिए तित्तिरजातक (37) का प्रमाण भी प्रस्तुत किया।[15] तत्काल ही अशोक ने संघ में आयी इस विपत्ति को दूर करने व इसे शुद्ध रखने के लिए तिष्य से कोई उपाय पूछा। तिष्य द्वारा संघ में एकता स्थापित करने के लिए सभी भिक्षुओं को एक स्थान पर बुलाकर प्रत्येक से अपना मत प्रतिपादित करने को कहा गया। उन्होनें मिथ्यावादी भिक्षुओं को अपने पास बुलाकर प्रश्न किया ''कल्याण रूप भगवान बुद्ध का क्या धर्म था''। प्रत्येक भिक्षु ने अपने धर्म विचार के अनुसार बुद्ध के धर्म की व्याख्या और समीक्षा की।

सम्राट ने धर्मनिष्ठ भिक्षुओं से पूछा, कल्याणमय भगवान का सिद्धान्त क्या था ? उन्होंनें उत्तर दिया ''सत्यता''। अन्त में सम्राट ने थेरों से पूछा आचार्य ''क्या बुद्ध स्वयं विभज्जवादी धर्म के थे'' ? थेरो नें उत्तर दिया, हाँ। सम्राट यह सुनकर अत्यन्त हर्षित हो गयें।[16] सम्राट समझ गयें कि इन थेरों के अतिरिक्त अन्य भिक्षु दूसरें पंथ वाले है। परिणामस्वरूप उन्होंनें ऐसें साठ हजार स्तेयसवासंक भिक्षुओं के वस्त्र, भिक्षु चिन्ह आदि

छीन कर, श्वेत वस्त्र पहनाकर संघ सें निष्कासित कर दिया। इन तीर्थिकों का निष्कासित किया जाना संघ की एकता के लिए आवश्यक था क्योकि यह बुद्ध के वचनों की उसी तरह निन्दा करने लगें थे जैसे कोई मुर्ख शुद्ध स्वर्ण की निन्दा करता हैं।[17] पाालि ग्रन्थों में श्वेत वस्त्रों को गृहस्थों और बौद्धेतर सम्प्रदायों के साधुओं का चिन्ह बताया हैं। इसका तात्पर्य यह था कि श्वेत वस्त्र पहनाने पर उन भिक्षुओं का गृहस्थ हो जाना जरूरी नहीं था वे अन्य सम्प्रदायों में साधुओं के रूप में लौट सकतें थें।[18]

इस प्रकार तृतीय महासंगीति का आयोजन करने की आवश्यकता बौद्ध संघ में उत्पन्न होने वाली फूट के कारण पडी। इसी विभाजान को रोकने के लिए ही अशोक ने अपने शासन काल के अठठारहवें वर्ष पाटलिपुत्र में बौद्ध महासंगीति बुलाई। तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन अशोक द्वारा अपने बौद्ध शासन को शुद्ध रखने व उसमें एकता व अखण्डता बनाये रखने के लिए किया गया। संगीति का आयोजन स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्य की अध्यक्षता में 250 ई.पू. में पाटलिपुत्र के अशोकाराम विहार में एक हजार स्थविरों की उपस्थिति में किया गया । इस संगीति में स्थविर सम्प्रदाय का ही बोलवाला था। तिस्य ने महासांघिक मतो का खण्डन करतें हुए अपने सिद्धांतों को ही बुद्ध के मौलिक सिद्धांत धोषित कर ''कथावत्थु'' नामक दार्शनिक ग्रन्थ का संकलन किया जिसे अभिधम्म पिटक के अर्न्तगत रखा गया। इस प्रकार बुद्ध की शिक्षाओं के तीन भाग हो गये, सुत्य, विनय और अभिधम्म जिन्हें त्रिपिटक की संज्ञा दी गई।[19]

बौद्ध संगीति की समाप्ति पर तिष्य द्वारा सम्राट के आग्रह पर भिक्षुओं को बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु देश देशान्तर में भेजने का निर्णय लिया गया। यह इस संगीति की सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि प्रथम बार भिक्षु संघ भारत के बाहर देशो में बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु गये। इन धार्मिक मिशनों का कार्य केवल धर्म प्रचार ही नहीं था बल्कि इनके साथ राज्यों की और से धन लेकर अनेक कर्मचारी भी जातें थे और उन लोगों में लोक सेवा सम्बंधी कार्य के साथ ही धर्म प्रचार भी करते थे। इन धार्मिक प्रचारकों के सम्बंध मे इतिहासकार स्मिथ का कहना हैं कि

''अशोक द्वारा धर्मप्रचारकों का भेजा जाना मानव इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना हैं। अशोक से पहले लगभग ढाई सौ वर्ष तक बौद्ध धर्म गंगा की घाटी तक ही सीमित रहा और इसकी हैसियत हिन्दु धर्म के एक सम्प्रदाय की ही रही परन्तु इस स्थानीय सम्प्रदाय को विश्व धर्म में परिर्वतित करना अशोक का एक महान ऐतिहासिक कार्य था।[20]

अशोक द्वारा संघ भेद रोकने के लिए किये गये प्रयास

तृतीय बौद्ध संगीति की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि इसमें संघ भेद रोकने व समाप्त करने के नियम अत्यन्त कड़ें कर दिये तथा बौद्ध संघ के साहित्य को निश्चत व प्रमाणिक बना दिया। संघ भेद को रोकने के उद्धेश्य से ही अशोक ने उपने धर्मलेखों के माध्यम से यह राजाज्ञा प्रसारित की कि भिक्षु अथवा भिक्षुणी जिसे संघ भेद का दोषी पाया जायेगा

, उसे संघ से निष्कासित कर दिया जायेगा।[21] संघभेद को रोकने के लिए अशोक द्वारा जारी किया गया आदेश बौद्ध संघ के इतिहास में अनूठा था। इस प्रकार का आदेश किसी और सम्प्रदाय के संघ के लिए जारी नहीं किया गया। हिन्दू धर्म में भी माना गया है कि ''कुल, जाति, जनपद एवं ग्राम आदि के संघों द्वारा की गयी संविदा का उल्लंधन करने वाला राज्य की और से दण्डित किया जाय । इस दण्ड का स्वरूप राष्ट्र देश से बहिष्कृत कर देना था''।[22]

अशोक ने अपने शासनकाल में निरन्तर यह प्रयास किया कि प्रजा के सभी वर्गो और सम्प्रदायों के बीच सहमति का आधार ढूंढा जाए और उसी सामान्य आधार के अनुसार नीति अपनाई जाय। संघ भेद को रोकने के उद्देश्य से अशोक ने अपने साँतवे शिलालेख में कहां कि ''सभी सम्प्रदाय के लोग सब जगह निवास कर सकतें हैं क्योंकि सभी आत्म संयम और भाव शुद्धि चाहतें हैं। अपने बारहवें शिलालेख में उसने धोषणा की कि अशोक सभी सम्प्रदाय के गृहस्थ और श्रमणों को दान आदि के द्वारा सम्मान करता हैं। किन्तु महाराज दान और मान को इतना महत्व नहीं देते जितना इस बात को देते हैं कि सभी सम्प्रदायों के लोगों में सारवृद्धि हो और सारवृद्धि के लिए मूलमंत्र हैं वाक्संयम। इसलिए लोग अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और दूसरे संप्रदायों की निन्दा न करें।[23] लोगों में आपसी सहमति बढ़ाने के उद्देश्य से ही अशोक ने अपने शासन काल के 13 वे वर्ष धर्ममहामात्रों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति भी की थी। जिनका कार्य विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच के द्वेष भाव को समाप्त कर धर्म की एकता पर बल देना था जिसका उल्लेख अशोक ने अपने पाँचवें शिलालेख में किया हैं।[24]

इसके अतिरिक्त अशोक ने अपने लघु स्तम्भ लेखो में भी संध भेद को रोकने के लिए राजघोषणाए खुदवाई। अशोक के सारनाथ, साँची वा कौशाम्वी में प्राप्त शिलालेख बौद्ध संघ में पड़ने वाली फूट को रोकने के लिए अशोक द्वारा दिये गये आदेशो का वर्णन करतें हैं। इन शिलालेखों मे अशोक ने स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी दी हैं कि अगर कोई भी भिक्षु बौद्ध संघ में फूट डालने का प्रयास करेगा तो सफेद वस्त्र पहनाकर संघ से निकाल कर बाहर अनावास स्थान में रखा जायेगा।[25] अनावास अर्थात् ऐसा आवास जो संघ के लिए योग्य न हो जैसें चेतिचयधरम (कब्रिस्तान) बोधिधरम, सम्मज्जनि अट्टकों (स्नानघर या चबूतरा), दारूअटटको (लड़की का धर) पानियमालों (पानीशाला) वच्चकुटि (शोचघर) और द्वारकोटठकों (नगरद्वार की मीनारें)।[26] साँची के लेख में तो अशोक ने इतने विश्वास से कह दिया कि जब तक मेरे पुत्र, पौत्र राज्य करेगें, सूर्य और चन्द्र में प्रकाश होगा तब तक भिक्षुओं व भिक्षुणियों का यह संघ समग्र रहेगा।[27]

संध भेद निवारण के इस कार्य में सम्राट यथेष्टता सफल हुए। उनके पराक्रम के फलस्वरूप संघ का मतभेद जाता रहा और वह पुनः संघटित हो चला। संघ के द्वारा भेद डालने का प्रयास अवश्य किया गया था परन्तु ये भिक्षु वाद विवाद द्वारा हरा दिये गये और फलतः संघ टूटने से बच गया। यद्यपि सम्राट के समय उनके पराक्रम द्वारा संघ पुनः

संघटित हो चला था किन्तु मतभेद होने का भय उनके मस्तिष्क को आक्रान्त किये ही रहा और इसी कारण उन्हें राजाज्ञायें प्रकाशित करनी पडी जिससे आने वाले दुस्तर भेदों से संघ की रक्षा हो सके।[28] अशोक का इन राजाज्ञाओं को पत्थर के स्तंभ या पत्थर के फलक पर लिखवानें का यही उद्देश्य था कि उसकी यह आज्ञायें चिरस्थायी रहें।

डी.एन.झा. के अनुसार ''पाटलिपुत्र में आयोजित बौद्ध परिषद का तृतीय महासम्मेलन संकीर्णतावादी बौद्धों का, संघ को पुर्नगठित करने और उससे भिक्षुब्धों तथा नवसुधारकों को बाहर निकालने का अंतिम प्रयास था।[29]

संदर्भ ग्रन्थ

1. विनयपिटके महावग्गपालि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन वाराणसी, 2013, पृ 18,19
2. डॉ. जयशंकर मिश्र, ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'' बिहार हिन्दी ग्रंथ आकादमी, पटना 2006, पृ . 826
3. श्रीराम गोयल, ''नंद मोर्य साम्राज्य का इतिहास'' कुसुमाज्जलि प्रकाशन, जोधपुर, 1992, पृ. 292
4. महावंसपालि, हिन्दी अनुवाद, स्वामि द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1996, पृ 40–41
5. दीपवंस मूलपाली, 7/34–35 हिन्दी अनुवाद स्वामि द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध आकार ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1996
6. कन्हैया लाल चंचरीक, ''भगवान गौतम बुद्ध जीवन और दर्शन ''यूनिवर्सिटी पब्लिकेंश्न, नई दिल्ली, 2006, पृ 81
7. थेरगाथापालि 2/17, हिन्दी अनुवाद स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन वाराणसी, 2008
8. महावंस 5/235, मूलपालि, हिन्दी अनुवाद, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री बौद्ध आकर ग्रन्थमाला वाराणसी, 1996
9. महावग्गपालि, उपोसथक्खन्धक, 2/1, पूर्वोक्त
10. महावंस–5/236–40 पूर्वोक्त
11. वही 5/243–45 पूर्वोक्त
12. थेरगाथापाली 1/75 पूर्वोक्त पृ. 26
13. वही 1/3
14. दीपवंस 7/51 पूर्वोक्त
15. महावंस 5/264 पूर्वोक्त
16. प्रो0 भगवती प्रसाद पांथरी, ''अशोक'', प्रतीक प्रकाशन नई दिल्ली, 1976, पृ. 134
17. दीपवंस 7/52–53 पूर्वोक्त,
18. श्रीराम गोयल, ''मागध सातवाहन कुषाण साम्राज्यों का युग'', कुसुमाज्जलि प्रकाशन मेरठ, 1988, पृ. 470
19. late Nagendra nath ghosh, "Early History Of India", The Indian press private ltd. Allahabad, 1964, P.56

20. डॉ. सत्यनारायण दुवे ''प्राचीन भारत का इतिहास, ''शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1978, पृ. 179
21. डॉ. मदन मोहन सिंह, ''बुद्धकालीन समाज और धर्म'', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, 1972, पृ.82
22. मनुस्मृति, 8/219, टीकाकार–श्री कुल्लूकभट्ट, हिन्दी व्याख्या–श्री प0 हरगोविन्द शास्त्री, चोरवम्भा संस्कृत भवन वाराणसी, 2009
23. द्विजेन्द नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली, ''प्राचीन भारत का इतिहास'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, वि. वि., 2005, पृ. 189
24. डॉ. पुरूषोत्तम लाल भार्गव, ''प्राचीन भारत का इतिहास'',द अपर इण्डया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड लखनऊ, 1966, पृ. 190
25. अत्रेयी विश्वास, ''प्राचीन भारत का राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982, पृ. 200
26. राधा कुमुद मुखर्जी, ''अशोक'', मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2004 पृ.162 पाद टिप्पणी।
27. वही, पृ. 167
28. प्रेा. भगवती प्रसाद पांथरी, पूर्वोक्त, पृ.132
29. डी.एन.झा., ''प्राचीन भारत'' एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, सौलहवा संस्करण, 2004, पृ. स. 73

• • •

44

पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में दिल्ली के तोमर राजाओं का इतिहास

***डॉ. मीना श्रीवास्तव**

अनंगपाल प्रथम ने 736 ई.[1] में ढिल्लिका पर तंवर राजवंश की स्थापना की थी। रोमिला थापर के अनुसार वि.सं. 793 (736 ई.) में तोमरों ने ढिल्लिका (दिल्ली)[2] नगर का निर्माण करवाया था। कनिंघम के मतानुसार ''विश्व की मान्यता प्राप्त परंपराओं के अनुसार 'इन्द्रप्रस्थ' शहर जो विक्रमादित्य के बाद से 792 वर्षो तक उजाड़ पड़ा हुआ था, तोमर राजपूत अनंगपाल प्रथम के द्वारा पुनः बसाया गया और इसका नाम ढिल्ली रखा गया।''[3] अवध बिहारीलाल ने यह उल्लेख किया है कि –'इन्द्रप्रस्थ' को पांडवो ने बसाया था। यह आधुनिक दिल्ली है जो 'शकप्रस्थ' भी कहलाता था।[4]

अनंगपाल प्रथम तंवर या तोमर के अन्य नाम विलहनदेव, जाउल और जाजू इतिहास में मिलते हैं। अनंगपाल द्वारा स्थापित तोमर राज्य उत्तर–पश्चिम भारत के केन्द्र में स्थित था और इसकी राजधानी 'अनंगपुर' थी। अनंगपाल प्रथम के कई पुत्र थे इनमें से तेजपाल ने तेजोरा, इन्द्रराज ने इन्द्रगढ़, रंगराज ने तारागढ़, अचलराज ने अचेवा (अचनेर–आगरा भरतपुर मार्ग पर), द्रोपद ने असि (हांसी) तथा शिशुपाल ने सिरसा और सिसबल बसाया था। कुरू क्षेत्र, थानेश्वर, प्रथूदक, मथुरा आदि स्थानों पर उसका आधिपत्य स्थापित था।[5] अनंगपाल के राज्य की सीमाऐं उज्जियनी के प्रतिहार राजा नागभट्ट प्रथम, कन्नौज के राजा यशोवर्मन एवं कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीठ की साम्राज्य सीमा से लगी थी। इस प्रकार अनंगपाल के राज्य की सीमाऐं उज्जियनी से दक्षिण और दक्षिण पश्चिमी में, काश्मीर से पश्चिम और उत्तर–पश्चिम में एवं पूर्व में कन्नौज की सीमा से लगी थी अतः उपर्युक्त इस विवरण से स्पष्ट होता है कि अनंगपाल प्रथम का 'तोमर साम्राज्य' विस्तृत था।

***प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष इतिहास, शास. के.आर.जी. स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)**

अनंगपाल प्रथम के उपरांत दिल्ली के अन्य तोमर शासक वासुदेव (लगभग 754 –773 ई.), गंगदेव (लगभग 773 –794 ई.), पृथ्वीमल्ल (लगभग 794 –814 ई.), जयदेव (लगभग 814 – 834 ई.), नरपाल (लगभग 834–849 ई.), रूद्र, उदयराज (लगभग 849–875 ई.) आपृच्छदेव (लगभग 875–897 ई.) , पीपलराज देव (लगभग 897–919 ई.), रघुपाल (लगभग 919–940 ई.) तिल्लहणपाल (लगभग 940–961), गोपाल (लगभग 961–979 ई.), सुलक्षण पाल (लगभग 979–1005 ई.), जयपालदेव (लगभग 1005–1021 ई.), कुमार पाल (लगभग 1021–1051 ई.), अनंगपाल द्वितीय (लगभग 1051–1081 ई.), तेजपाल प्रथम (लगभग 1081–1105 ई.), महीपाल (लगभग 1105 से 1130 ई.), विजयपाल (लगभग 1130 –1151 ई.), मदनपाल (लगभग 1151–1167 ई.), पृथ्वीराज (लगभग 1167–1189 ई.), चाहड़पाल (लगभग 1189 –1192 ई.) एवं तेजपाल (लगभग 1992–1193 ई.)[6] आदि थे।

उपर्युक्त दिल्ली के तोमर राजपूत शासकों का इतिहास जानने के लिये तत्कालीन अभिलेखीय साक्ष्य ऐतिहासिक दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ये अभिलेख इस प्रकार से है :

(1) हर्षनाथ का अभिलेख :

सीकर जिले में वि.स. 1030 (973 ई.) की आषाढ़ सुदी 15[7] का अभिलेख हे। यह अभिलेख हर्षनाथ के मंदिर में है। हर्षदेव के मंदिर का निर्माण शाकम्भरी के चौहान नरेश गुबक (गोविन्द्रराज) ने करवाया था। यह गुबक 833 ई.[8] में शासन कर रहा था। इसने दिल्ली प्रदेश के एक तोमर राजा को हराया और उसका वध कर दिया।[9] अभिलेख में उत्कीर्ण है कि –

हत्वा रूदेन भूपं समरभुवि बलाद्येन लब्धा जयश्रीः[10]

अभिलेख में वर्णित उक्त पंक्ति से ज्ञात होता है कि रूद्र नामक तोमर राजा को चौहान राजा ने युद्ध क्षेत्र में पराजित किया था। गूबक (गोविन्द्रराज) प्रथम नागवलोक सभा में नेता के रूप में प्रसिद्ध थे। यह भी विवरण प्राप्त होता है कि – गूबक के पुत्र चन्द्रराजा, चन्द्रराजा के पुत्र गुबक द्वितीय, उसके पुत्र चन्दन ने तोमर राजकुमार रूद्र को हराया था। उसके पुत्र वाकपतिराजा के पुत्र सिंहराजा ने तोमर नेता 'सालवन' को जीता उसके पुत्र विग्रह राजा ने हर्षनाथ के लिये कुछ अनुदान दिये। इस घटना और अनुदान का उल्लेख हर्ष अभिलेख की निम्नांकित पंक्तियों में किया गया है :–

तोमरनायकं सलवणं सैन्याधिपत्योद्वतं
बुद्वे येन नरेशवराः प्रतिदिशं निर्न्ना (णर्ना) क्षिता विष्णुना।
कारावेश्मनि भूरयश्च विधृतास्तावद्वि यावदगृहे
तन्मुक्त्यर्धमुपागतो रघुकुलोः भूचक्रवर्ती स्वयम।।[11]

प्राप्त विवरणों में तोमर राजा रूद्र का वध गूबक और चंदन के द्वारा किये जाने का उल्लेख मिलता है। रूद्र तोमर के शासनकाल का वर्ष अप्राप्त है। पूर्व मध्यकालीन भारत के शासको में बहुत से ऐसे शासक हुए हैं जिनका कालक्रम विवरण अप्राप्त है अथवा उसमें भिन्नता मिलती है। डी.आर. भंडारकर के अनुसार ''वह दिल्ली का राजा था जो उस समय तोमर शक्ति का प्रसिद्ध राजा था।'' इस प्रकार तोमर राजा रूद्र को अयोग्य शासक न मानते हुए शक्तिशाली तोमर राज्य का शासक स्वीकार किया गया है।[12] कीलहार्न ने रूद्र का नाम रूद्रेना (रूद्रपाल) कहा है।[13] हेमचन्द्र रे ने उल्लिखित किया है कि – '' चौहानों द्वारा तोमर राजा रूद्रेन (रूद्रपाल) को युद्ध क्षेत्र में पराजित किया गया था। संवत् 1030 के हर्ष अभिलेख में उपर्युक्त घटना का उल्लेख प्राप्त होता है।''[14]

उपर्युक्त विवरण के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि रूद्र तोमर दिल्ली का राजा था, चूंकि उसके शासनकाल का वर्ष अप्राप्त है अतः किस चौहान राजा ने उसका वध किया था, इस घटना की यथार्थता जानने में भिन्नता मिलती है। परन्तु यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चौहान और तोमर राजा के मध्य संवत् 1030 से पूर्व आपसी वैमनस्यता आरंभ हो गई थी।

(2) लौहस्तंभ के अभिलेख :

दिल्ली में कुतुबमीनार के पास एक लोहे की बड़ी कीली आज भी है यह स्मारक ठोस ढलवा लोहे का है। इसकी लम्बाई 23 फीट 8 इंच तथा मोटाई 20 फीट 2 इंच जिसका 18.5 फीट भाग जमीन के ऊपर है और जिसका क्षेत्र 3.5 फीट इसका व्यास 12.05 फीट शिखर से बढ़ता हुआ 16.4 इंच जमीन पर हो गया है। जमीन के नीचे (अंदर) से यह लोहा एक लट्टू के आकार में 2 फीट 4 इंच के व्यास से बढ़ता हुआ निकलता है। यह पत्थर और शीशे के भू–भाग पर स्थित है।[15] चंदबरदाई ने पृथ्वीराज रासो में इस लौह स्तम्भ के संबंध में यह उल्लेख किया है कि –

कल्हनपुर कल्हन नृपति, वासीनृप निज साज।।
किल्क पाट अंतर नृपति, अनंगपाल भय राज।।छः।।7।।[16]

अनंगपाल तंवर का 'कल्हन' नाम भी था। उसके इस नाम से दिल्ली को 'कल्हनपुर'[17] भी कहा जाता था। गुरू व्यासदेव की आज्ञा से कि इस तोमर राजा ने एक लोहे की कीली मंगवाकर मंत्रोच्चारण के साथ यहाँ गड़वा दी। तत्पश्चात् व्यासुदेव ने यह भी कहा कि इस कीली को निकालने का साहस मत करना। यह कीली जब तक अचल है तब तक तुम्हारा राज्य भी अचल रहेगा। राजा ने एक दिन कीली को निकलवाया परन्तु शीघ्र ही गड़वा दिया परन्तु वह ढीली ही रही और पूर्ववत् स्थापित नहीं हो सकी। राजा अनंगपाल ने व्यासुदेव की आज्ञानुसार यहां पर एक नगर बसाया। इस नगर का नाम कीली के ढीली हो जाने के कारण 'ढिल्ली' हुआ जो बाद में 'दिल्ली' कहा जाने लगा।[18]

यह भी विश्वास किया जाता है कि अनंगपाल ने चौथी शताब्दी में बने लौह स्तंभ को जो किसी विष्णु मंदिर का ध्वज था उसे लाकर लालकोट में स्थापित किया।[19]

कनिंघम को लौहस्तंभ पर दो छोटे–छोटे लेख प्राप्त हुये थे इनमें से प्रथम शिलालेख में ''सं. 418 राजतुंबर आदि अनंग'' लिखा था।

उपर्युक्त वर्णित संवत् को गुप्त संवत् मानकर कनिंघम ने ईसवी सन् 736 गिना था। यह गणना उन्होंने इस प्रकार से की है : 418 + 318 = 736 ई.।[20] अतः इस प्रथम अभिलेख से अनंगपाल प्रथम तोमर राजा का शासनकाल सुस्पष्ट होता है।

कनिंघम ने लौह स्तम्भ पर अंकित द्वितीय अभिलेख में यह उल्लिखित पाया – **''संवत् दिहालि 1109 अंगपालबहि''** कनिंघम के अनुसार इस अभिलेख का अर्थ है कि – ''संवत् 1109 (1052 ई.) में अंग (अनंग) पाल ने दिल्ली बसाई। हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार इस अभिलेख का वास्तव में अर्थ यह है कि – ''दिल्ली में प्रचलित संवत् 1109 में अनंगपाल ने इस लौहस्तंभ का वहन किया।''[21]

कर्नल जेम्स टाड के अनुसार – ''महाराज अनंगपाल भारत के चक्रवर्ती राजा थे। ये प्रथम तुंवरराजा विहलनदेव (अनंगपाल प्रथम) से कई पीढ़ी पीछे हुए थे।''[22] लौह स्तंभ में पाए गये ये दोनों अभिलेख निश्चित ही अनंगपाल प्रथम एवं अनंगपाल द्वितीय के शासनकाल का रहस्योद्घाटन करते हैं।

(3) पेहवा का अभिलेख :

हरियाणा के करनाल जिले के पेहवा[23] नामक स्थान पर दसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है इस अभिलेख में तोमरों द्वारा तीन मंदिरों के निर्माण किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। शिलालेख के द्वारा यह अनुमान लगाया जाता है कि दसवीं शताब्दी के आसपास प्रतिहार राजाओं के द्वारा जागीरदारों के रूप में तोमर यहाँ आए होंगे।

पेहवा के शिलालेख तथा अनुश्रुतियों के अनुसार – जाउल अथवा विल्हणदेव तोमर[24] (अनंगपाल प्रथम) पहले किसी राजा का कार्य करता था। सीकर जिले के हर्षनाथ से प्राप्त दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के एक अभिलेख से भी इसकी पुष्टि होती है।

(4) विष्णु की मूर्ति पर अभिलेख :

दिल्ली में कुतुबमीनार के दक्षिण पूर्व में एक चतुर्भुज विष्णु की काले पत्थर की मूर्ति पाई गई है। इस मूर्ति के पैरों के पास एक संस्कृत अभिलेख में सं. 1204 (1147 ई0)[25] खुदा है। जिससे यह प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की स्थापना सं. 1204 में की गई होगी। इसकी स्थापना रोहतिका (रोहतक) के एक व्यापारी के द्वारा की गई होगी। इस मूर्ति के पास ही पत्थर का एक चबूतरा है उसके ऊपर पंचरथ मंदिर का आकार अंकित है। 1147 ई. में दिल्ली राज्य पर तोमर राजाओं का आधिपत्य स्थापित था। मूर्ति के चरण के पास

खुदे हुए सं. 1204 से यह स्पष्ट होता है कि तोमरों के शासनकाल में ही किसी व्यापारी के द्वारा इस मूर्ति की स्थापना की गई होगी। जो वैष्णव धर्म का उपासक होगा।

(5) कुवैतुल (कुव्वतुल) इस्लाम मस्जिद का अभिलेख :

तोमर शासकों को पूर्णतया पराजित करने के उपरांत कुतुबुद्दीन ऐबक ने हिन्दू और जैन मंदिरों को तुड़वाकर उससे प्राप्त सामग्री से कुबैतुल–इस्लाम– मस्जिद बनवाई इसके मुख्य दरवाजों पर उल्लेख है कि – ऐबक ने 27 हिन्दू और जैन मंदिरों को नष्ट करने उसका प्रयोग किया है।[26] इस शिलालेख पर हि0 587 (सन् 1191 ई0)[27] उल्लेख है।

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई0) द्वारा किए गए तोड़–फोड़ के कारण उसके (ऐबक) पूर्व के तोमर शासकों द्वारा निर्मित शिलालेख नष्ट हो गए हैं। द्विवेदी के उल्लेख से ज्ञात होता है कि –देवनागरी अक्षरों के कुत्व के लेखों के विषय में डॉ0 त्रिवेदी ने एक अद्भुत रहस्योद्घाटन किया है। उस पर वि.सं. 1204 (1147 ई0) तथा 1256 (1199 ई0) के लेख मिले थे। इनमें से वि.सं. 1204 (1147 ई0) का अभिलेख तंवरकालीन है। इन वर्षो के लेखों को बेग्लर ने देखा था परन्तु उसके पश्चात् उन्हें छील डाला गया ताकि उन्हें फिर न पढ़ा जा सके।[28]

(6) दिल्ली (शिवालिक) स्तंभ अभिलेख :

1163 या 1164 ई0 के अभिलेख[29] से इस घटना की पुष्टि होती है कि चौहानवंश (शाकम्भरी के चौहान) में राजा विग्रहराज चतुर्थ (विशालदेव या विशाल देओ) ने तोमरों से दिल्ली छीनी थी। यह अभिलेख अब फिरोजशाह कोटला में है जिससे विन्ध्य और हिमालय के बीच की भूमि में विग्रहराज की विजय हुई थी इसकी पुष्टि होती है। जब विशालदेव ने बारहवीं शताब्दी[30] के मध्य में दिल्ली पर विजय प्राप्त की तब भी दिल्ली के आसपास का क्षेत्र तोमरों के अधिकार में था।

(7) विजौलिया अभिलेख :

उदयपुर जिले के विजौलिया अभिलेख से ज्ञात होता है कि शाकम्भरी के चौहान राजा विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली और हांसी[31] पर विजय प्राप्त की थी। वि.सं. 1226 (1169 ई0) के इस अभिलेख में सर्वप्रथम दिल्ली का नाम ढिल्लिका अथवा ढिल्ली[32] मिला है।

विजौलिया के इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज चतुर्थ का संभवतः दिल्ली के राज्य पर शासन कर रहे तोमर राजा से संघर्ष हुआ था।

(8) पालम बाओली का अभिलेख :

अ. 1276 ई0. का अभिलेख–

पालम बाओली (पालम की बाबड़ी) के 1276 ई0 (वि.सं. 1333) के अभिलेख[33] में दिल्ली का प्राचीन नाम 'धिल्ली' प्राप्त होता है जो 'हरियाणका' देश में था इसका दूसरा नाम 'योगिनीपुरा' का उल्लेख भी इस अभिलेख में प्राप्त होता है। तोमरवंश में नरपाल (लगभग 834– 849 ई0) के बाद संभवतः रूद्र राजा हुआ जिसका वध चंदनराज चहमान ने किया।[34] रूद्र की बहिन रूद्राणी चंदनराज की रानी थी इसका अन्य नाम 'आत्मप्रभा' भी था। यह आत्मप्रभा शिव की अनन्य भक्त थी जो 'योगिनी' के रूप में प्रसिद्ध थी। यह विवरण प्राप्त होता है कि इसी योगिनी के नाम से दिल्ली का प्राचीन नाम 'योगिनीपुर' था।[35]

ब.1280 ई0 का अभिलेख–

पालम बाओली के वि.सं. 1337[36] (1280 ई0) के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि हरियाणा तोमर राजाओ के अधीन उनके द्वारा शासित राज्य था। चौहानों द्वारा आक्रमण करके बाद में इसे चौहान राज्य में मिला लिया गया था। तोमरों के समय में इसकी राजधानी ढिली या ढिल्लिका थी, जो अब दिल्ली नाम से जानी जाती है। पालम की बाबड़ी के शिलालेख में उल्लेख है कि :–

अमोजितोमरेरदौ चौहाणेस्तदनंतरम्।
हरयानकभूरेषा शकैन्द्रेः शास्यतैडधुना।।

(9) दिल्ली संग्रहालय के अभिलेख :

वि.सं. 1384[37] (1327 ई0) के दिल्ली संग्रहालय के अभिलेख से ज्ञात होता है कि हरितनाका (हरियाणा) तोमर द्वारा शासित राज्य था, जो कालिन्दी (यमुना) के किनारे बसा हुआ था। इसकी राजधानी ढिल्लिका थी। तोमरों द्वारा हांसी को गजनावती से वापस छीना गया था जो चौहानों द्वारा हांसी पर विजय प्राप्ति से पूर्व तोमर शासकों के अधीन रहा।

देशोऽस्ति हरियानख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकारन्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।। 3

तोमरानन्तरं यस्यां राज्यं निहतकंटकं।
चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालन तत्परोः।। 4

1384 ई. के इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि – हरियाना नामक एक देश है अधिकतर यह स्वर्गतुल्य है। उसमें एक शहर है जिसे ढिल्लिका कहते हैं, इसे तोमर शासकों ने निर्मित किया है जिसमें तोमरों के बाद चौहान राजा ऐसा राज्य स्थापित करने को उत्सुक थे जिससे अपने अधीनस्थों की रक्षा करके सार्वजनिक शांति व्यवस्था के दुश्मनों को नष्ट कर दिया जाये।[38]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अभिलेखीय साक्ष्यों के अध्ययन के उपरांत निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि –

1. पांडवो द्वारा बसाए गए 'इन्द्रप्रस्थ' पर जो पर्याप्त समय तक निर्जन रहा वहाँ विल्हणदेव तोमर राजपूत द्वारा 'ढिल्ली' राज्य की स्थापना की गई। यह विल्हणदेव अनंगपाल प्रथम के नाम से इतिहास में जाना जाता था।
2. तंवर या तोमर राजपूत राजाओं के तत्कालीन चौहान और प्रतिहार राजाओं के साथ कभी मित्रता तो कभी शत्रुतापूर्ण संबंध स्थापित रहे थे।
3. दिल्ली के तंवर राजपूत राजाओं का साम्राज्य विस्तृत था ये कभी स्वतंत्र शासक तो कभी चौहानों या प्रतिहार शासको के अधीन करद राजा की स्थिति में भी रहे थे।
4. सांस्कृतिक पुनरूत्थान में दिल्ली के तोमर शासकों का योगदान अविस्मरणीय है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एपीग्राफी इंडिका भाग–1 आर्कियोलाजीकल सर्वे ऑफ इंडिया नई दिल्ली संस्करण 1971 पृ.क्र. 93, 94 एवं द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, पृ.क्र. 190 प्रकाशक विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार, ग्वालियर–6
2. थापर, रोमिला मध्यकालीन भारत, प्रकाशन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् संस्करण सन् 1988 पृ.क्र. 26
3. कनिंघम, मेजर जनरल सर अलेकजेंडर – कॉइन्सऑफ मेडिवल इंडिया, प्रकाशक निर्मल डी जैन ओरियन्टल बुक्स रिप्रिन्ट कॉरपोरेशन 10वी नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली–6 संस्करण प्रथम अगस्त 1967 पृ.क्र 80
4. अवस्थी, अवध विहारी लाल – प्राचीन भारतीय भूगोल (महाभारत आदिपर्व) प्रकाशक श्रीमती आशा अवस्थी कैलाश प्रकाशन 76, खुर्सेद बाग, लखनऊ–4, संस्करण प्रथम 1972 पृ.क्र. 144
5. द्विवेदी, हरिहर निवास–दिल्ली के तोमर , उपरोक्त पृ.क्र. 195।
6. द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृ.क्र. 155, 156।
7. भंडारकर, डी.आर.–उत्तर भारत के अभिलेख पृ.क्र. 15 एपीग्राफी इंडिका एण्ड रिकार्ड ऑफ दी आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया भाग 19 से 23 प्रकाशक 5/33 कीर्ति नगर, इण्डस्ट्रीयल एरिया न्यू दिल्ली 110015, संस्करण 1983 एवं द्विवेदी हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृ.क्र. 69।

8. गहलोत, जगदीश सिंह – राजस्थान के राजवंशों का इतिहास, प्रकाशक राजस्थान साहित्य मंदिर जोधपुर (राजस्थान) संस्करण फरवरी 1980 पृ.क्र. 6
9. दुबे, सत्यनारायण – भारत का इतिहास, प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी इंदौर संस्करण द्वितीय 1990 पृ.क्र. 219
10. एपीग्राफी इंडिका भाग–2 श्लोक क्र. 14, उपरोक्त पृ.क्र. 121।
11. वही, पृ.क्र. 121, 122
12. धोधियाल, बी.एन. अजमेर गजेटियर पृ. क्र. 36 प्रकाशक डायरेक्टर डिस्ट्रिक गजेटियर राजस्थान जयपुर संस्करण 1966 एवं शर्मा, दशरथ–अर्ली चहमान डायनेस्टी, प्रकाशक ए चन्द्र एण्ड कं. आसफ अली रोड, नई दिल्ली संस्करण 1959 पृ.क्र. 26
13. एपीग्राफी इंडिका भाग–2, उपरोक्त पृ.क्र. 121।
14. रे, हेमचन्द्र – डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया, पृ. क्र. 1146 प्रकाशक श्री सुरजीत के गुप्ता शहादरा दिल्ली संस्करण द्वितीय एवं एपीग्राफी इंडिका भाग–5, पृ. क्र. 7 नं. 44 उपरोक्त एवं पाठक, विशुद्धानंद– उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, पृ. क्र. 443 प्रकाशक उ.प्र. हिन्दी संस्थान हिन्दी समिति, प्रयाग राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग लखनऊ–1, 1982
15. जैन, विपिन – दिल्ली गजेटियर पृ. क्र. 22 प्रकाशक 557 सेक्टर 14 गुडगांव हरियाणा संस्करण प्रथम 1913 पुर्नसंस्करण 1992 एवं शर्मा, वाय.डी. दिल्ली एंड इट्स नेवरहुड प्रकाशक डायरेक्टर जनरल आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया नई दिल्ली संस्करण 1990 पृ.क्र. 55
16. चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, भाग–1 , प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा बनारस पृ.क्र. 273।
17. वही
18. वही
19. शर्मा, वाय.डी.– दिल्ली एंड इट्स नेवरहुड उपरोक्त पृ.क्र. 13।
20. कनिंघम मेजर जनरल सर अलेकजेंडर– काइन्स ऑफ मेडीकल इंडिया, उपरोक्त पृ.क्र. 81।
21. द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृ.क्र. 69
22. टॉड, कर्नल जेम्स – राजस्थान इतिहास भाग–1 प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई संस्करण सं. 1982 पृ.क्र. 115
23. शर्मा, वाय.डी. – दिल्ली एण्ड इट्स नेबरहुड, उपरोक्त पृ.क्र. 212।
24. द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, पृ. क्र. 187 उपरोक्त एवं रे, एच.सी. –डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इंडिया, उपरोक्त पृ.क्र. 1146–1147।
25. घोष, ए. डायरेक्टर जनरल भारतीय पुरातत्व – भारतीय पुरातत्व, डिपार्टमेंट ऑफ आर्कियोलॉजी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया नई दिल्ली संस्करण 1959।
26. शर्मा, वाय.डी. – दिल्ली एंड इट्स नेवरहुड, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 52।
27. द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 61।
28. द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 64।
29. शर्मा, वाय.डी. ढिल्ली एंड इट्स नेवरहुड, उपरोक्त पृ. क्र. 14।
30. रे, हेमचन्द्र–डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 1146।
31. शर्मा, दशरथ– अर्ली चहमान डायनेस्टी, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 59।
32. शर्मा, वाय.डी. –दिल्ली एंड इट्स नेवरहुड, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 14–15।
द्विवेदी, हरिहर निवास– दिल्ली के तोमर, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 41।
33. शर्मा, वाय.डी. ढिल्ली एंड इट्स नेवरहुड, उपरोक्त पृष्ठ क्र. 15।

34. एपीग्राफी इंडिका भाग 2 हर्ष अभिलेख, उपरोक्त पृ. क्र. 121।
35. शर्मा, दशरथ–अर्ली चहमान डायनेस्टी, उपरोक्त पृ. क्र. 27।
36. वही, पृ. क्र. 45, 46, 59 एवं द्विवेदी हरिहर निवास दिल्ली के तोमर, पृ. क्र. 111 उपरोक्त एवं रे, एच.सी.– डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्थन इंडिया, उपरोक्त पृ. क्र. 1146 ।
37. शर्मा, दशरथ –अर्ली चहमान डायनेस्टी, उपरोक्त पृ. क्र. 45, 46, 59।
38. एपीग्राफी इंडिका भाग 1 पृ. क्र. 93, 94 उपरोक्त एवं द्विवेदी, हरिहर निवास – दिल्ली के तोमर, पृ. क्र. 112 उपरोक्त एवं रे, एच.सी. डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया , उपरोक्त पृ. क्र. 1145।

• • •

45

ऐतिहासिक साहित्य के अध्यापन की समस्यायें

***डॉ. सुरजीत कौर**

भारत में अंग्रेज़ी राज्य के समय पश्चिमी ढंग की विद्या प्रणाली आने के कारण अंग्रेजी विद्वनों का नाम चमकने लगा लेकिन भारत की अपनी विरासत धुंधली पड़ने लगी। भारतीय साहित्य की विरासत पर तो उसका सबसे ज्यादा असर पड़ा। आज़ादी के पश्चात् जब भारतीय विद्वनों ने अपनी धरोहर को फरोला तो साहित्य तो बड़े धनी रूप में उनके अपने पास पहले ही मौजूद था। बहुत देर तक तो हमारी यह भी बदकिस्मती रही कि हमने संस्कृत साहित्य को आगे बढ़ाने की कोशिश ही नहीं की, अगर की भी तो बहुत कम की और इसे ही अन्तिम मान कर संतुष्ट होते रहे।

इतिहास शब्द संस्कृत का शब्द है, जिस का अर्थ है, 'इस प्रकार हुआ'।[1] भारत वर्ष में इतिहास शब्द का प्रयोग सबसे पहले अथर्ववेद में हुआ माना जाता है।[2] पंजाबी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वन भाई कान सिंह नाभा के अनुसार

इत–ह–आस, जिसका अर्थ है ऐसी प्रसिद्ध जगह अर्थात ग्रन्थ, जिस में बीती हुई घटनाओं का क्रम अनुसार ज़िक्र हो।[3]

इतिहास एवं साहित्य चाहे दो अलग–अलग विद्याऐं हैं, फिर भी यह एक दूसरे की पूर्क बनती हैं, और एक दूसरे के अध्यन में सहायक भी होती हैं। जैसे कि भारतीय साहित्य में राजा अशोक का जीवन संस्कृत नाटक मुर्दा राखशस के आधार पर लिखा गया है।

इतिहास की विद्या चाहे साहित्य की विद्या से अलग है, लेकिन जब इतिहास साहित्य की विद्या में तबदील हो जाता है तो उसकी हालत मिट्टी के घोड़े जैसी बन जाती है, जिसमें मिट्टी और घोड़े को अलग नहीं किया जा सकता। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी विद्धान टोयंबी ने ईलियड नाम की रचना का हवाला देकर इस का महत्व इस प्रकार बताया हैः

*** पंजाबी प्रक्वता, खालसा कॉलेज फर विमैन, अमृतसर पंजाब**

इतिहास की उत्पति नाटक एवं उपन्यास की तरह पौराणिकता के गर्भ से हुई है, जिस में तथ्य एवं कल्पना को अलग करने वाली रेखा दिखाई नहीं देती। ईलियड नाम की रचना को अगर इतिहास मान कर पढ़ा जाए तो इस में सम्पूर्ण रूप में कल्पना के दृश्य साकार होते हैं और उसके उल्ट अगर इसे साहित्य मान कर पढ़ा जाय तो इस में पूर्ण में इतिहास के दर्शन होते हैं।[4]

किसी भी वस्तु एवं घटना के प्रति हरेक व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण होता है और उसकी व्याख्या करने का भी अपना ढंग होता है। एक ही घटना के प्रति दो अथवा अधिक साहित्यकारों की दृष्टि अलग–अलग हो सकती है। ऐतिहासिक साहित्यकार इतिहास की हर घटना को अपने साहित्य का विषय नहीं बनाता है, वह इतिहास से कुछ–कुछ घटनाएं लेता है, जो साहित्यकार के मन को मोह लेती है और उसे आवश्कता भी लगती हैं, वह उस घटना के बाहरी पक्ष के साथ–साथ उस घटना के अंत्रीव पक्ष को भी ब्यान करता है।

भारत के इतिहास में गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी एवं औरंगज़ेब की कूट चालों से सभी लोग वाकिफ हैं। पंजाबी साहित्य में इस घटना के आधार पर पांच नाटक मिलते हैं। डॉ. सुप्रभा आर्या रचित एकांकी 'बल होआ बंधन छुटे' और डॉ. चरण सिंह डरोली रचित नाटक 'बाहि विना दी पकडीअै' में गुरु तेग बहादुर जी की शहीदी के बाद लोग इक्मुटठ हो चुके हैं और वो जुल्म के विरुध टक्कर लेने को त्यार है। डॉ. शहरयार रचित नाटक 'सीम दिया पर सिरड़ न दीया' में आम लोग बहुत डरे हुऐ हैं, वह मन से औरंगजेब को केवल बददुआऐं दे सकते हैं और स्कून हासिल करने के लिए भगवान एवं अल्ला के आगे प्रार्थना करते हैं। डॉ. हरचरण सिंह रचित नाटक 'हिन्द दी चादर ' में लोगों के मन में डर नाम की चीज़ खत्म हो चुकी हैं और पांधी ननकाणवी रचित नाटक 'धर पईअै धर्म न छोड़ीअै' में लोगों के साथ औरंगज़ेब भी भयभीत है।

इस प्रकार यहां एक ही घटना को लेकन जब साहित्यकार की दृष्टि बदल जाती है तब प्रवक्ता का काम और ज़्यादा बढ़ जाता है। साहित्य की यह आवश्यकता है कि पात्रो ंकी गिनती अल्प है मगर इतिहास में लोगों की गिनती भी ज्यादा होती है और लोग मिले जुले होते है, कई बार तो एक ही व्यक्ति का व्यक्तित्व भी समय के अनुसार बदल जाता है, वह एक समय के कुछ देर के लिए भयभीत और कुछ समय बाद निडर भी हो जाता है।

ऐतिहासिक साहित्य को पढ़ाते समय एक और मुश्किल का सामना करना पड़ता है कि कई बार एक ही पात्र को लेकर साहित्यकार की दृष्टि बदल जाती है। जैसे कि पंजाबी साहित्य में बीर काव्य के क्षेत्र में शाह मुहंमद रचित 'जंगनामा सिंघां ते फरंगियां' और खोज़ी काफिर एकांकी 'महाराणी जिंदां' में महाराजा रणजीत सिंह की पत्नि महाराणी जिंदां एक अनाड़ी शासक है, लेकिन हरचरण सिंह रचित नाटक 'पंजाबी विच्च इक्को मर्दः महाराणी जिंदां' एक परिपक्क राजनीतीवान स्त्री है। ऐसी स्थिति में हरेक साहित्यकार तो उसका चित्रण ठीक कर रहा है, उसने कभी भी कोई गलती नहीं की हैं, क्योंकि वो

स्त्री अनाड़ी से ही परिपक्क शासक हुई थी लेकिन प्रवक्ता को शिक्षार्थीयों को पढ़ाते समय इस समस्या का सही ज्ञान तो होना ही चाहिए, उसके बाद वह छात्रों को भी पात्र के अनाड़ी से परिपक्क होने का जो ऐतिहासिक सफर है, उसके बारे में भी ज्ञान देना चाहिए।

ऐतिहासिक साहित्य को पढ़ाते समय एक और मुश्किल का सामना करना पड़ता है कि अकसर लोग उसके बारे में पहले से ही जानते होते है प्रवक्ता को उसी घटना को दिलचस्प बनाने के लिए और भी मेहनत करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में कहानी अंदाज में अगर उस ऐतिहासिक घटना शिक्षार्थीयों को बताने लगेगा तो वो अपने आप को उस घटना से जोड़ सकेंगे, इसके साथ इनको एक तो उस विषय में दिलचस्पी पैदा होगी दूसरा वो उसके बारे में और ज्यादा जानने की जिज्ञासा भी रखेंगे और अपने अतीत पर कहीं गर्व करेंगे और कहीं उससे शिक्षा लेंगे।

ऐतिहासिक साहित्य को पढ़ाते समय कहीं तो यह मुश्किल होती है कि छात्र उसके बारे में पहले से ही जानकारी रखते है और कहीं यह भी मुश्किल आ जाती है कि वो घटनाऐं बहुत ज़्यादा पुरानी होती हैं। उसके बारे में इतिहास का छात्र तो जानकारी रखता है मगर साहित्य का छात्र जानकारी नहीं रखता। तो यहां भी प्रवक्ता को उस घटना के बारे में खुद भी पूरी जानकारी लेनी होगी और उस समय की सुविधाऐं, संस्कृति, भाषा देशभूषा के बारे में भी पूरी जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि आज का छात्र उस समय के बारे में कुछ भी नहीं जानता होगा। प्रवक्ता पढ़ाते समय उस घटना के साथ–साथ उस समय के कानून प्रबंध, रीति रिवाज़ (जैसे कि घूंघट, दासी प्रथा आदि) भाषा (जहां पनाह, आर्या पुत्र) आदि के बारे में भी पूर्ण ज्ञान होता जायेगा तो शिक्षार्थी न केवल अपने आप को उस घटना से जुड़े महसूस करेंगे बल्कि यह भी जान पायेंगे कि हमने कुछ नया सीखा भी है।

ऐतिहासिक साहित्य की पात्र योजना में यह बात बड़े ध्यान की मांग करती है कि पात्र का स्वरूप जो पहले जन मानस में बना हुआ है, उसका बदलना आसान नहीं है। साहित्यकार ने चाहे उस समय मनोविज्ञानक रुप से उसका ठीक चित्रण किया हो तो वहां प्रवक्ता को छात्र के मनोविज्ञान के बारे में भी ध्यान रखना होगा। जैसे कि भारतीय जन मानम से औरंगजेब कभी अच्छा नहीं हो सकता, भगत सिंह कभी कायर नहीं हो सकता तो वहां अगर ऐतिहासिक साहित्य में पात्र का ऐसा स्वरुप आ रहा है तो प्रवक्ता को पात्र एवं छात्र के मनोविज्ञान की रक्षा करनी होगी कि हर इन्सान गुणों एवं औगुणों का मिश्रण होता है, कभी किसी के गुण विशेष होते है और कभी किसी के अवगुण। औरंगजेब कुरान लिख कर रोजी कमाने के कारण एक गुण का धारणी था लेकिन ज़बरदस्ती अपना धर्म मनवाने के कारण अवगुणी ज़्यादा था। भगत सिंह अपने बारह वर्ष के भाई कुलबीर सिंह के बिना किसी आरोप के ग्रिफतारी के कारण चन्द मिन्टों के लिए कायर भी हो सकता है।

यूँ तो बहुत देर तक हमारी संस्कृत साहित्य को अंतिम मान कर उसको आगे बढ़ाने की कौशिश नहीं की लेकिन ऐतिहासिक साहित्य अब इस विषय में बधाई का अधिकारी है, क्योंकि ऐतिहासिक साहित्य ने संस्कृत साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाया है जैसे कि साहित्य में नायक का गैर हाज़िर होना। यह नायक साहित्य में भी ऐतिहासिक होते हैं। पंजाबी नाटक साहित्य में तो यह बात आम पाई जाती है। गुरु नानक देव जी, गुरु अर्जुन देव जी, गुरु तेग बहादुर जी की जन्म शताब्दियों पर कई नाटक लिखे गये और यह शताब्दी नाटक ही कहलवाये। यह नाटक इन गुरुओं के जीवन पर ही आधारित थे और इनके नायक भी गुरु जन ही थे, लेकिन इनके नायक मंच पर नहीं आते। इस में प्रवक्ता को पढ़ाते समय यह बताना आवश्य है कि यह पात्र श्रोतागण, दर्शक एवं पाठक वर्ग में एक बहुत बड़ी श्रद्धा वाले पात्र है, इनका आदर करते हुऐ इनकी बराबरी न कर सकने के कारण इनको मन्च पर नहीं लाया जाता और सूत्रधार एवं संगीत का सहारा लिया जाता है।

ऐतिहासिक साहित्य ने संस्कृत साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए एक और भी बहुत बड़ी प्राप्ति की है कि यह खलनायक प्रधान भी बने हैं। यूँ तो साहित्य मे प्रधान पात्र नायक ही होता है, लेकिन ऐतिहासिक साहित्य में यह खलनायक प्रधान भी पाये गये हैं जैसे कि पंजाबी साहित्यकार डॉ. शहरयार के लिखे नाटक 'जलियां वाला' में प्रधान पात्र जरनल डायर है। ऐसे साहित्य के लिए प्रवक्ता की ज़िम्मेदारी बनती है कि वो उसके बारे में बताये कि प्रधान पात्र खलनायक बनने के पीछे क्या कारण है, क्योंकि घटना में स्थिरता, सच्चाई एवं पक्याई पाने के लिए, घटना के साथ छात्रों को जोड़ने के लिए, खलनायक के अंत्रीव मन और उसे घटना के पीछे खलनायक की कुछ मजबूरियां बताने के लिए ऐतिहासिक साहित्य का प्रधान पात्र खलनायक भी हो सकता है।

सम्पूर्ण विचार चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक साहित्य किसी भी देश की धरोहर होता है, जो आज के श्रोता, दर्शक एवं पाठक को न केवल अपने अतीत से जोड़ता है बल्कि उसको शिक्षा भी प्रदान करता है, ऐतिहासिक साहित्य को पढ़ाने के लिए उस समय की संस्कृति, वेशभूषा, औज़ार जंग करने का ढंग, वहम–भर्म, विश्वास, आदि के आज के छात्र को जोड़ना कोई मुश्किल बात नहीं है क्योंकि आजकल तकनालोजी ने इतना विकास कर लिया है कि पौराणिक साहित्य के दृश्य को भी साकार किया जा सकता है, ऐतिहासिक साहित्य तो उसके मुकाबले काफी आसान है।

संदर्भ ग्रंथ

1.उर्द् – पंजाबी–हिन्दी कोश, प्रथम भाग, पृष्ठ 447.
2.भाई काहन सिंह नाभा, गुरु शब्द रत्नाकर महान कौश, भाग पहला, पृष्ठ 93.
3.डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग, हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास, पृष्ठ 20.
4.A.J. toynbee, A Study of Literature, Page 44.

• • •

46

मध्यकालीन सूफी काव्य में परिलक्षित सौंदर्य

***डॉ अनीता भारद्वाज**

प्रेम से सर्व सृष्टि चलायमान है। सूफी कवियों ने प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित की है "स्वछता, सौंदर्य, साहस, कल्पना आदि से मिश्रित प्रणय– भावना किसी भाषा विशेष, देश–विदेश या सम्प्रदाय– विशेष की विशेषता न होकर एक ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति है जो हर भाषा और हर देश के साहित्य में समय–समय पर परिस्थितियों के प्रभाव से उन्मीलित होता है। सूफी कवियों ने प्रेम से जीवन मे विविधताओं का समावेश व अन्य–अनेक विविधताओं और विशेषताओं से काव्य को सुसज्जित किया है।"[1]

सूफी काव्य से पूर्व सूफी कवियों की सृष्टि के विषय में डॉ० राजकुमार वर्मा के विचार दृष्टव्य है। "ईसा की आठवीं शताब्दी मे इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ राजनैतिक नहीं धार्मिक पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल उठ खड़ा हुआ इसने परम्परागत मुस्लिम आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया की कुछ समय तक इस्लाम के धार्मिक क्षेत्र मे उथल–पुथल मच गई। इस सम्प्रदाय ने संसार के सारे ऐश्वर्यों और सुखों को स्वप्न की भांति भुला दिया। सादगी और सरलता उनके बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई। कीमती कपड़े और स्वादिष्ट भोजन से उन्हें घृणा हो गई। सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रखकर उस सम्प्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र भी बहुत साधारण रखे। वे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र। फारसी मे सफेद ऊन को सूफ कहते है उनके परिधान के कारण ही सूफी की सृष्टि हुई।"[2]

ये ऐसा सम्प्रदाय था जो स्वयं सुख व ऐश्वर्य को त्याग चुका था किन्तु अपने पाठकों को लेखनी के सुख व ऐश्वर्य से लबालब करता है साहित्य के क्षेत्र में प्रेम का ऐसा चंद्रमा चमकाया की पाठक का अंग–प्रत्यंग भीग गया। इन काव्यों में जहाँ एक ओर प्रेम–वर्णन मे फारसी ढंग की जुगुप्सा, भयानकता, वीभत्सता और विरह मे ऊहापोहात्मकता से जैसे–तैसे बचते–बचाते भारतीय प्रेम की पावनता तथा सात्विकता को निभाया गया है वही फारसी शैली को अपनाते हुए साधक नायक लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की, अनेक मुसीबतों को सहने के पश्चात भी सफल प्राप्ति कर लेता है।

***अध्यक्ष,हिन्दी विभाग ए.पी.जे. कन्या महाविद्यालय चरखी दादरी,भिवानी,हरियाणा**

"भारतीय महाकाव्यों की भांति प्रेमाख्यानों में भी नगर, युद्ध, भोजन, भोज, वस्त्र, आभूषण तथा शास्त्रों का विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। प्रेमाख्यानों का अन्य संप्रदायों संबंधी मूल स्वर संत काव्य के मूल स्वर से सर्वथा विपरीत है। संत काव्य में जहाँ खंडनात्मकता की प्रधानता है, वहाँ सूफी कवियों ने किसी धर्म, जाति विशेष अथवा सम्प्रदाय का खंडन नहीं किया।[3]

इन कवियों के प्रबंध काव्य को डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त मात्र नवीनता की झोंक मे महाकाव्य कहने मे संकोच करते है और लिखते है–"कथा–काव्य या प्रेमाख्यान अपने आंतरिक या बाह्य गुणों के कारण 'महान काव्य' तो बन सकता है, किन्तु शिल्प शास्त्रीय दृष्टि से उसे महाकाव्य मानना या उसमें महाकाव्य के लक्षणों और गुणों का अनुसंधान करना वैसा ही होगा, जैसा कि आम्रफल में द्राक्षा की विशेषताएँ खोजना।"[4]

जायसी अल्लाह के द्वारा पहले 'नूर' उत्पन्न करने और हजरत मुहम्मद के खातिर धरा पर स्वर्ग की कल्पना, आकाश तत्व को छोड़ कर बाकी चारों तत्वों की चर्चा फारसी–ईरानी शैली को अभिव्यक्त करते है आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रेम–काव्यों को फारसी मसनवी– शैली में रचित माना था किन्तु गुप्त कहते है कि–" आचार्य शुक्ल के मतानुसार इन काव्यों के आरम्भ मे ईश्वर–स्तुति, तत्कालीन शासक का उल्लेख, कथा का सर्गों में विभक्त न होना, पूरे काव्य में एक ही छंद का प्रयोग होना आदि बातें इन्हें मसनवी सिद्ध करती है। किन्तु सत्य यह है कि कुछ रचनाओं के स्तुति खंड में ही इस प्रभाव को स्वीकार किया जा सकता है, अन्यथा मसनवी–काव्य के अनेक लक्षण– जैसे पूरे काव्य का एक ही छंद मे लिखा जाना, कथा सर्गों का खंडों मे विभक्त न होना आदि–इन प्रेमाख्यानों मे नहीं मिलते है"।[5]

सूफी कवियों की रचना का उद्देश्य यश–प्राप्ति, काम शिक्षा देना, काव्य–कला प्रदर्शन इत्यादि है। भारतीय प्रेम प्रबंधन काव्यों मे अक्सर सामान्य वर्णन ही चलता है किन्तु सूफी काव्यों मे नायिका का स्वरूप संसार मे खुदा के नूर का पर्याय होता है जिससे समस्त संसार प्रकाशित होता है सूफी कवियों ने पात्रों का शील निरूपण किया है।

डॉ० हरिश्चंद्र वर्मा का कथन है कि–" भारतीय पद्धति 'नख–शिख–वर्णन' की है और सूफी पद्धति 'शिख–नख' वर्णन की"।[6] पत्रों के शील वर्णन मे सूफी सिद्धस्त है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का सन्देश देने मे सूफी कवि पूर्णतः सक्षम रहे है डॉ० वर्मा ने डॉ० असद अली का कथन उचित माना है कि पद्मावत फारसी अंदाज का प्रेम –काव्य है, अभिप्राय यह है कि हिन्दी और संस्कृत– साहित्य परम्परा के विपरीत इसमें औरत को माशूका और मर्द को आशिक बनाया गया।[7]

भारतीय संत कवियों ने इसके विपरीत परम्परा का निर्वहन किया है। सूफी कवियों हठयोग साधन और सूफी साधना की चारों अवस्थाओं का वर्णन किया है–

"नवों खंड नव मौरी औ वज्र केवार
चारि बसेरे सौ चढै, सत सों उतरे पार।"[8]
सूफी काव्य मे प्रतीक विधान की सुंदरता देखते ही बनती है।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं– – – –
प्रेम कथा रहि भांति विचारहू। बूझिलेहु जो बुझै पार हूं।[9]

इन प्रतीकों का स्पष्टीकरण डॉ० राजदेव सिंह ने इस प्रकार किया है जिन चौदह भुवनों की बात कही जाती है वे सभी मानव पिंड मे वर्तमान है। पद्मावत की कथा चूँकि पिंड और ब्रह्मांड मे समान भाव से स्थित दो तत्वों वाले परम सत्य की कथा है, अतः इस कथा मे चितौड़ तन का प्रतीक है और रत्नसेन मन का। सिंहल हृदय का प्रतीक है और पद्मावती अद्वैत बोध बुद्धि का इस अद्वैत बुद्धि की ओर अग्रसर करने वाला मार्ग दर्शक गुरु हीरामन तोता है। इस गुरु के बिना वह त्रिगुणातीत तत्व मिलता ही नहीं। नागमती द्वैत बुद्धि की प्रतीक दुनिया धंधा है। यह भी बुद्धि का ही प्रतीक है किन्तु उस बुद्धि का जो द्वैत को जन्म देती है, कामायनी की इडा की तरह। इस प्रेम–मार्ग मे बचता वही है जो इस द्वैत बुद्धि 'दुनिया–धंधा या नागमती से अपने को बाँधती नहीं है।' दूत राघव चेतन शैतान का प्रतीक और अलाद्दीन माया का"[10]

जायसी ने प्रतीक योजना मे कुछ परम्परागत प्रतीकों का सफल प्रयोग किया है साथ–साथ मौलिकता का सृजन मानों स्वतः ही हो गया हो। उन्होंने ऐसे प्रतीकों का सृजन किया है जो भारतीय महाकाव्यों में देखने को नहीं मिलते।

जायसी ने प्रतीक सुंदरता का वर्णन करते हुए इस लोक तथा लोकोत्तर कल्पना का सम्मिश्रण करके सुंदरता की छटा बिखेरी है। डॉ० मनमोहन गौतम के अनुसार इस प्रकार पद्मावत की कथा के माध्यम से जायसी ने समस्त सूफी–साधना का मर्म समझाया है। सूफी प्रेम, विरह और साधना के समस्त अंग प्रतीकों मे प्रस्तुत किए गए है। पद्मावत की कथा तो बहाना है। लौकिक कथा को अंत में जायसी स्वयं नगण्य सिद्ध कर देते है–

"कहाँ सो रतनसेनि अस राजा।
कहाँ सुवा असि बुद्धि उपराजा ।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू ।
कहाँ राघौ जेई किन्ह बखानू ।
कहाँ सरूप पद्मावति रानी।
कोई न रहा जग रही कहानी।"[11]

रस की दृष्टि से आलंकन करने पर ज्ञात होता है कि रसराज श्रृंगार के संयोग–वियोग पक्ष में सूफियों का मन पूरी तरह रमा है। वियोग की चारों अवस्थाएँ पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण का हृदय स्पर्शी वर्णन हुआ है अलाउदीन और गोरा बादल युद्ध के प्रसंगों मे कवि ने भयानक ,रौद्र ,वीभत्स तथा वीर–रस का अद्वितीय वर्णन किया है।

दुखांतक कथाओं मे करूण के साथ–साथ शांत रस का परिपाक किया है। जब युद्ध–भूमि मे नायकों को वीरगति प्राप्त होती है तो माताओं के विलापों से वात्सल्य रस की उत्पत्ति हुई है। रस की दृष्टि से हास्य रस को छोड़कर अन्य सभी रसों में सूफियों को महारत हासिल है।

अलंकार योजना बड़ी कुशलता से नियोजित की है। जहाँ भारतीय काव्य–शास्त्र के अनुसार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा , अन्योक्ति, अतिश्योक्ति, अनुप्रास का स्वभाविक उपयोग किया है। वहाँ फारसी काव्य–शैली का अनुसरण करते–करते कुछ स्थानों पर अस्वभाविकता, भदेसपन तथा वीभत्सता के दर्शन भी होने लगते है। वियोग मे मीरा व कबीर सी तड़प दिखाई देती है क्योंकि–

'छार उठाई लीन्ह एक मूठी।
दीन्ह उड़ाई फिर थमी झूठी
जौ लगि ऊपर छार न परई।
तब लगि नाही ओतिसना भरई।"[12]

इनकी मान्यता है कि जो मृगशिश नक्षत्र की कड़ी तपन को सहन करते है अर्थात जो जितना विरह की तपन को सहन करता है वे आर्द्रा नक्षत्र की घोर वर्षा में उतने ही फलते फूलते है। यदि ये कहा जाए तो गलत न होगा कि उन्ही पर पति प्रेम की सुमधुर बरसात होती है।

छंद की दृष्टि से देखें तो सूफी कवियों को दोहा, चोपाई के साथ–साथ, सात–सात अर्धालियों के बाद एक दोहा रख कर अनुपम कडवक छंद अथवा काव्य शैली को जन्म दिया है। परम्परागत कवित्त, सवैयों, कुंडलियाँ, झुलना बरवै, सोरठा इत्यादि छंदों के प्रति प्रेम अवर्णनीय है।

''आदि अन्त जसि कथ्था अहै, लिखि भाषा चौपाई कहै''[13]

भक्तिकाल के प्रेमआख्यानों मे ब्रज भाषा, राजस्थानी तथा दक्खिनी हिन्दी का प्रयोग हुआ है किन्तु सूफी काव्य में बोलचाल की लोक–प्रचलित अवधी भाषा से काव्य का रूप सवंर गया है भाषा भी गौरव प्राप्त कर गई है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूफी काव्य का चंद्रमा अपनी सुहावनी रश्मियों से पाठक को शीतल सुरभित गंध का अहसास कराता हुआ विभिन्न बवों के सर में स्नान कराता है। पाठक कभी लौकिकता का कभी अलौकिकता का अहसास करता है।

सन्दर्भ

1. स० डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ स०–144, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन ए–95, सेक्टर–5 नोएडा–201301 प्रकाशन वर्ष 15 जून 1973
2. माया अग्रवाल, जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–1, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992

3. माया अग्रवाल, जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–7, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
4. स० डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ स०–149, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन ए–95, सेक्टर–5 नोएडा–201301 प्रकाशन वर्ष 15 जून 1973
5. स० डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ स०–147, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन ए–95, सेक्टर–5 नोएडा–201301 प्रकाशन वर्ष 15 जून 1973
6. डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ स०–162, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन ए–95, सेक्टर–5 नोएडा–201301 प्रकाशन वर्ष 15 जून 1973
7. असद अली भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पृ०सं–202
8. माया अग्रवाल जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–41, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
9. माया अग्रवाल जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.44, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
10. माया अग्रवाल जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–44, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
11. माया अग्रवाल जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–59, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
12. माया अग्रवाल जायसी कृत पद्मावत, पृ०सं.–59, अनीता प्रकाशन, 3696ए चरखे वालान, दिल्ली 110006, प्रकाशन वर्ष 1992
13. स० डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०सं –165 मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन ए–95 सेक्टर–5 नोएडा–201301 प्रकाशन वर्ष 15 जून 1973

• • •

47
मध्यकाल में हरियाणा खाप पंचायत

***किरन सरोहा**

कुछ समय पहले हरियाणा अपनी खाप पंचायतों के नकारात्मक कार्यों के कारण चर्चा में रहा । समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, टीवी व फिल्म (चलचित्र) के माध्यम इसका नकारात्मक रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया। विचारणीय तथ्य यह है कि प्राचीन काल से चली आ रही इस संस्था का रवैया सदैव कट्टरपंथी व तानाशाही रह है या तस्वीर कुछ और ही है। मध्यकाल में खाप पंचायतों का लेखा जोखा निम्न है। हरियाणा खाप पंचायतों का क्षेत्र दिल्ली के चारों और 125 कोस का क्षेत्र है।[1] सौरम अभिलेखागार सामग्री में कहीं 150 मील और पहले 200 मील का क्षेत्र बताया है।

अर्थ व निर्माणः—सर्व खाप पंचायत में सर्व अर्थात सब, अनेक 'खाप' अर्थात समूह, संगठन, पाल, डोंग या मंडली। पंच अर्थात न्यायशील व्यक्ति व पंचायत पाँच या अधिक व्यक्तियों से मिलकर बनती है। हरियाणा में गंतंत्रीय पंचायत प्रणाली का विधान मनु जी ने किया है। ऋग्वेद 08/25/22 मंत्र में आदि सृष्टि से ही हर—हर महादेव शिव ने राज्य गणो या जन जटाओं अर्थात खापों की स्थापना और संगठन करके अपने दोनों पुत्रों को इसके सुशासन में नियुक्त कर दिया था। उनके बड़े पुत्र कार्तिकेय का सैन्य तथा निवास स्थान रोहतक में था। बाद में यह योद्धय गण कमजोर पड़ गया।[2]

संगठनः— प्रत्येक गाँव की पंचायत होती थी। गाँव के बाद थांबो, 'मण्डलो' की पंचायतें थी और थांबो के ऊपर खाप पंचायत होती थी। तदुपरान्त हर्षवर्धन के काल में (संवत 699 वि०) जनपदों के आधार पर राज्य का बंटवारा किया गया जो आगे चलकर खाप कहलाई।[3] किसी क्षेत्र के सबसे पुराने गाँव में से निष्कासित जनो द्वारा बसाये गये अन्य गाँवों को मिलकर एक खाप का निर्माण हुआ। प्राचीन गाँव जिसमे से अन्य गाँवों की निकासी हुई थी 'दादा गाँव कहलाता था। मुखिया दादा गाँव से ही चुना जाता था। यह मुखिया अपने क्षेत्र के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक मामलों का जिम्मेदार था। संवत 701 विक्रमी में सभी खापों के मुखियाओं को एकत्रित कर' सर्वखाप पंचायत का निर्माण हुआ। ये 'सर्वखाप पंचायत कालांतर में हरियाणा सर्वखाप पंचायत' कहलायी।

***प्रवक्ता इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय खरखौदा (सोनीपत) हरियाणा**

हर्षवर्धन ने खाप को केसरिया रंग का उगते सूर्य के चिन्ह को झण्डा प्रदान किया।

विशेषताः– खाप पंचायतों में सभी जातियों के व्यक्ति शामिल थे। 36 जात '(10 सूर्यवंशी (मनु के पुत्र की संतान) 12 चंद्रवंशी मनु की पुत्री की संतान, 12 ऋषियों के नाम पर, 4 अग्निकुल से), की एकता थी।[4] जोगियो द्वारा गायी गयी साखी के अनुसारः–

यहाँ की पंचायत ही सब राजा रानी
यहाँ प्रधान बने हैं ज्ञानी।
ब्राह्मण से भंगी तक इस पद को पावें
यहाँ कर्मयोग की पूजा करावें।[5]

प्रधान किसी भी जाति से हो सकते थे। हर खाप से मंत्री भी नियुक्त किए जाते थे। ये पद पैतृक होते हैं। उदाहरण स्वरूप बलियान खाप सौरम में मंत्री पद चला आ रहा है। अब मंत्री सुभाष जी हैं जो 25वि० पीढ़ी से हैं। प्रथम मंत्री राव राम राणा 'खिलजी वंश के काल में' थे। प्रधान प्रायः बुद्धिमान होते थे। बादशाह बलबन ने 19 घोड़ों के बँटवारे के लिए सौरम गाँव के पंचों को बुलाया।[6]

पंचायती ढांचा पूर्णतरू लोकतंत्रीय संगठन था। खाप में कोई पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति हाथ में गीता, गंगाजल व पीपल का पत्ता लेकर समाज सेवा की शपथ लेता। नैतिकता का गुण सेर्वोपरी था।[7] स्वयं बाबर ने जो कि 1528 ई० में सौरम गाँव (आधुनिक उत्तरप्रदेश जिला मुजफ्फरनगर) आया था। पंचायत के बारे में कहा था ''मैंने 'सर्वखाप पंचायत' के पंचों को देखा है जो सच्चे इनसाफ़ परस्त और कौल फेल के पाबंद हैं।[8] मानसम्मान के लिए पंचायत कुछ भी कर सकती थी। उलाउद्दीन खिलजी ने देहली के कोतवाल से कहा था'' इन पंचायती संगठन से टक्कर नहीं लेनी चाहिए। ये वीर ततैयों के छत्ते हैं। एक बार छिड़ने पर पीछा नहीं छोड़ते।[9] ये पंचायतें इतनी महत्वपूर्ण थी कि समय–समय पर बाबर, अकबर, जहाँगीर, व बहादुरशाह जफर ने इनसे पत्र व्यवहार किया जिनमें कभी दावतनामा तो कभी करमाफ़ी तो कभी सहायता मांगी गयी।[10] ये मुगल पंचायत के प्रशंसक थे। बाबर ने सौरम के चौधरी को सन 1556 में एक रुपया इज्जत का व 125 रुपय पगड़ी के दिये। खाप पंचायतों की एक प्रमुख विशेषता थी उनका 'मल्ल विभाग'। मल्ल खाप पंचायत के अवैतनिक सैनिक थे। ये झपट्टा मार शैली से युद्ध लड़ते थे जो कि गुरिल्ला युद्ध की तरह थे। दुश्मनों की सेना में ये 'जिन्न भूतों' के नाम से प्रसिद्ध थे।[11] खाप पंचायतें इनके खाने का प्रबंध करती जो कि सात्विक व ताकत से भरा हुआ था जैसे चूरमा, खीर, हलवा, गुलगुले, पूड़े, मेवे, छाछ, दूध आदि। ये मांस व नशे से परहेज करते। नाच गाने आदि व्यसनों से दूर रहते। ये भक्ति करते। विद्वानों, भाठों व चरणों के उपदेश व कवितायें सुनते। नैतिकता इनका प्रमुख गुण था। ये एक प्रकार के वीर संन्यासी थे जो अखाड़े में व्यायाम करते। अखाड़े में न जाने पर पंचायत उन्हे दंड दे सकती थी। पंचायत अपने हाथी, घोड़े, व खच्चर रखती। मल्लों के लिए हथियारों का प्रबंध भी पंचायत ही करती थी। ये मल्ल शांति स्थापित करते, चोर–डाकुओं से रक्षा करते, गाँव के आपसी युद्ध जिन्हे 'धाड़' कहा जाता था में हिस्सा लेते।

' कहानी– बलबन के अमीर ने अपनी वसीयत में 19 घोड़ों का बटवारा लिखा था जिनमें तीन संतानों में पहले को आधा, दूसरे को चोथा और तीसरे को पंचवा भाग देना था। सौरम के चौधरी राम सहाय पंच ने एक घोघ लाकर 19 घोड़ों में मिला दिया। पहली संतान को 20 के आधे 10 घोड़े, दूसरे को 20 के चौथाई 5 घोड़े और तीसरे को 20 का पाँचवाँ भाग 4 घोड़े दे दिये और अपने एक घोड़ा वापस ले लिया।

बाह्य आक्रमणकारियों का मुकाबला करते।[12] आक्रमण होने पर इन मल्लों का सेनापति चुनने का तरीका भी अनूठा था। पंचायत में पान का बीघ रख दिया जाता जो पान का बीघ चबाता वही सेनापति माना जाता। अराजकता के काल में पंचायतें अहम भूमिका निभाती। कोई भी आपत्ति आने पर खाप पंचायतों की सभा कर निर्णय लिए जाते।[13] राजधानी दिल्ली के चारों और होने के कारण खाप पंचायत राजधानी की सुरक्षा करती। चंगेजी मुगलों के विरुद्ध खाप पंचायतों अलाउद्दीन खिलजी को सहायता दी। तैमुर के आक्रमण के समय खाप पंचायतों की अनेक सभाएं हुई। पहली पंचायत डीघल बेरी(रोहतक), दूसरी बादली(रोहतक) में, तीसरी सीसोली(मुजफ्फरनगर)में, चौथी सैदपुर(बुलंदशहर) व महापंचायत सर्वखाप चौगामा(मेरठ) में हुई। मल्लों के साथ वीरांगनाओं के भी भाग लिया और तैमुर जब मेरठ से हरिद्वार जा रहा था उस पर आक्रमण किया। गौरी के विरुद्ध पृथ्वीराज चौहान का साथ दिया व बाबर के विरुद्ध राणा सांगा को भी सहयोग दिया।[14]

जब अराजकता का वातावरण होता तब देश व धर्म की रक्षा खाप पंचायतें करती जैसे राठोर और चौहनों के पतन के बाद सन 1251 में भाजूबनेड़ा की सभा हुई जिसमे देश धर्म व कृषि की रक्षा का भार खाप पंचायतों ने उठाया।[15] 1598 वि० संवत में चौधरी मोहनादास की अध्यक्षता में कैराने में पंचायत हुई व सब जातियों के 9 हजार आदमी तैयार किए गये क्योंकि शेरखान व हुमायूँ में युद्ध हो रहा था। आपत्ति काल में भैंसवाल बत्तीसा का गठन हुआ। औरंगजेब के विरुद्ध गुरु गोविंद का साथ पंचायतों ने दिया। गुरु गोबिन्द का पंचायतों से पत्र व्यवहार हुआ तब 1200 हरयानवी मल्ल साधू भेष में गुरु गोबिन्द की सेना में जा मिले व भागी व नानौन्द, अंदार व चमकौर की लड़ाई लड़ी। चित्तौड़ की रानी करमवती ने हुंमायु को राखी भेज कर सहायता मांगी क्योंकि गुजरात के शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया था। हुंमायु के युद्धरत्त होने के कारण हुंमायु के भाइयों ने राखी स्वीकार न की तब यह राखी खाप पंचायत बलियान ने स्वीकार की। मल्ल सेना हुंमायु के साथ चित्तौड़ प्रस्थान हुई परंतु देर हो चुकी थी। रानी करमवती ने जौहर कर दिया था जिसका बदला हरयानवी मल्लों ने बहादुरशाह के भाई वीरानशाह को मार कर लिया। 12000 की मल्ल सेना बहादुरशाह को राजस्थान में हराया। पानीपत के युद्ध में मराठा सदाशिव भाऊ की सहायता की। सिसौली में सभा की गयी। सोलाल प्रधान, रामकला व लखंडी उपप्रधान के निर्णय से 16000 मल्ल जवान कुंझपुरा में भाऊ की सेना से मिले। इतना ही नहीं दक्षिण में भी विजयनगर को बहमनी शासन से बचाने के लिए (सं० 1506 वि०) हरयानवी मल्ल गये। इस प्रकार खाप पंचायतें रक्षा का कार्य करती रही।[16]

खाप पंचायतें स्मरण पत्र देने का काम भी करती थी। उदाहरणतया औरंगजेब के विरोध में सं० 1718 वि० को छपरौली में 25 खापों की एक सभा हुई जिसके प्रधान थे हरनन्द। औरंगजेब को उसके अत्याचारों के विरुद्ध खाप ने एक स्मरण पत्र भेजा। स्मरण देने गये इन लोगों पर बादशाह ने मस्त हाथी छुड़वा दिये।[17]

खाप पंचायतें वीरों को परितोषिक व उपाधियाँ भी प्रदान करती थी। उदारहणतया सं० 1529 वि० हस्तिनापुर की सभा में मेवाड़ के राजा रायनन्द ने मोहरा तोड़ भंगी को उसकी मल्ल विद्या के लिए वीर पदक प्रदान किया। निसाढ़ की सभा में (सं० 1686 वि०) में जाटों के एक दल को मलिक की उपाधि दी गयी।

अत्याचारों का विरोध भी खाप पंचायतों ने समय–समय पर किया। सन 1287 में शिकारपुर (उत्तरप्रदेश) में एक सर्वखाप पंचायत हुई जिसमें लाखों लोग इक्कठे हुए। सभा के प्रधान थे मस्तपाल। इसमें बादशाह कैकूबाद के विरुद्ध 25 हजार हथियारबंद युवक तैयार किए गये। फैंसला था की जज़िया नहीं, हर साल आधा अन्न नहीं देंगे, विवाहों में सरकारी हुक्म नहीं मानेंगे, व पंचायतें पूरी तरह आजाद रहेंगी।[18] परंतु युद्ध से पहले ही बादशाह ने समझोता कर लिया। सन 1311 में बड़ोत में राणा भीम देव की अध्यक्षता में जज़िया के खिलाफ पंचायत हुई जिसमें 60 हजार व्यक्ति एकत्रित हुए। युद्ध हुआ 7000 पंचायती मारे गये। सन् 1362 में सिसौली में पुनः जज़िया के विरोध में पंचायत हुई। पंचायत ने बलिदानी दल तैयार किया। 210 पंचायतियों ने गढ़ मुक्तेश्वर में गंगा में खड़े हो शपथ ली व दिल्ली फिरोजतुगलक के दरबार के लिए रवाना हुये। दरबार में जाने के लिए पाँच वीर चुने गये– सदाराम ब्राह्मन, हरभजन जाट, रुणामल वैश्य, अंतराम गुज्जर, और बांवरा भंगी। बादशाह ने इन्हें भी जड़िया से बचने का उपाय सुझाया कि मुसलमान हो जाओ। परंतु पांचों पंचों ने मना कर दिया। पंचों के समक्ष अग्नि जलवा दी गयी। पांचों पंच एक के बाद एक करके उसमें कूद गये। बाकि पंचों को काजी मुईउद्दीन ने जबरदस्ती अग्नि में फिकवा दिया जिसका विरोध बुल्लाशाह फकीर ने किया। फकीर को भी अग्नि में फिकवा दिया गया। बाद में पठान मुन्नू खां (जॉनपुर वासी) ने काजी मुईउद्दीन को मार कर आत्मबलिदान दे दिया।[19]

पंचायतों में महिलाओं की भी अनदेखी नहीं की गयी। पंचायतों के मल्ल विभाग में बहुत सी महिलाएं भी थी। अलाउद्दीन ने मंगोलो के विरुद्ध जो युद्ध लड़ा उसमें भागीरथी देवी ब्रह्मचारिणी भी थी जिसने जींद के पास 28,000 मल्ल वीरांगनाओं के साथ मंगोलों के विरुद्ध लड़ाई की। तैमूर के विरुद्ध 1455 वि० संवत में पाँच महिला सेनापति भी चुनी गयी– देवीकौर राजपुत्री, चंद्रौ ब्राह्मण कन्या, हरदेयी जाट, रामप्यारी गुज्जर व रामदेवी तगापुत्री।[20] युद्ध के अलावा महिलाएं दुश्मनों की रसद लूटती। ब्राह्मण व क्षत्रिय कन्याएँ भोजन के लिए शंख व घड़नावल बजाती। भंगी कन्याएँ युद्ध के संकेतार्थ रणसिंहा, तूर्ही, ढ़ोल, व ऊंटों पर घोसे नक्कारे बजाती। घायलों की मरहम पट्टी करती व भोजन देती।

मध्यकाल में विवाह संबंध व पंचायतों का वर्णन इस प्रकार है। वि० सम्वत 1246 में टीकरी सभा में शादियों सुधारों का प्रस्ताव रखा। वि० सम्वत 1305 में सिसौली की

सभा में प्रस्ताव पास किया गया कि किसी जाति कि स्त्री का विवाह उसकी रजामंदी से होगा। हस्तिनापुर सभा में अपील की गयी कि सब कुलों के वीर जातीय भेदभाव भुलाकर विवाह करें। हालांकि (सम्वत 1580 वि०) राजकली राजपूत व ढमलचन्द ढलैत के विवाह पर पौराणिकों ने विरोध किया पर पंचायत ने समर्थन किया।[21] सर्व खाप पंचायत में 1857 तक स्वयंवर विवाहों का वर्णन मिलता है। परंतु बाद में पौराणिक महत्वपूर्ण हो गये एवं पंचायती नेता निर्बल हो गये। बलात विवाहों का वर्णन भी है। बलात विवाहों का विरोध पंचायतें करती थी। उदाहरण के लिए सम्वत 1613 वि० में मेरठ मण्डल के जानसठ (ज्ञानअष्ट महाभारतकालीन नगर) कस्बे के पास घयण गाँव में मुसलमान बहुसंख्या में भी थे और अमीर भी। अगवा नामक मुसलमान वहाँ जागीरदार था। उसके लड़कों ने दो हिन्दू जाट कन्याओं से बलात विवाह करना चाहा तब 8–10 गाँव की पंचायत हुई। एक लड़की की सगाई डीगल ग्राम (रोहतक) के अहलावत लड़के से कर दी गयी। मुसलमान से भी निकाह का समय तय कर दिया व निकाह वाले दिन 1200 पंचायती जवान लड़की पक्ष के व 250 मल्ल डीघल ग्राम के (साधू भेष में) एकत्रित हो गये व निकाह वाले दिन अधिकतर मुसलमानों को मार दिया गया व गाँव की एक लड़की का विवाह डीघल में दूसरी का रोहतक गाँव में कर दिया।[22]

इस प्रकार मध्यकाल में खाप पंचायतों ने राजनैतिक, सामाजिक जीवन में एक अहम भूमिका अदा की।

संदर्भ सूची

1. आर्यमर्यादा–सम्राट पहाड़ी धीरज, दिल्ली।
2. आचार्य भगवान देवरू हरियाणा के वीर योद्धेय, दिल्ली सन् 1986 ई०, प्रकाशन गुरुकुल झज्जर ,पृ० 44–56
3. चौधरी कबुल सिंहः महाराजा हर्षवर्धन सर्वखाप पंचायत उदय , छोटू राम प्रैस , मुज्जफ्फरनगर , पृ० 4
4. चौधरी कबुल सिंहः सर्वखाप पंचायत का मौलिक इतिहास , प्रकाशन काबूल सिंह शोरों मुज्जफ्फरनगर ,पृ०15–20
5. पंचायती अभिलेखागार सौरम से प्राप्त सामग्री।
6. नेहाल सिंह आर्यः सर्वखाप पंचायत का राष्ट्रीय पराक्रम , पृ० 105
7. जाट महान, वर्ष 2, अंक 9, अगस्त 2012, पृ० 10
8. महाराजा सूरजमल टाइम्स 2008 मई
9. सुधारक–गुरुकुल झज्जर–रोहतक
10. पंचायती अभिलेखागार सौरम में पत्र हें।
11. नेहाल सिंह आर्य : सर्वखाप पंचायत का राष्ट्रीय पराक्रम , पृ० 277

12. चौधरी कबुल सिंह मंत्री : सर्वखाप पंचायत का शक्ति संगठन 2007 ई० , प्रकाशन काबूल सिंह शोरों मुज्जफ्फरनगर पृ० 16
13. नेहाल सिंह आर्य : सर्वखाप पंचायत का राष्ट्रीय पराक्रम , पृ० 115
14. वही पृ० 108–109
15. चौधरी कबुल सिंह मंत्री : सौरम सर्वखाप पंचायत बलियान खाप, जनवरी 1975, प्रकाशन काबूल सिंह शोरों मुज्जफ्फरनगर पृ० 10,
16. नेहाल सिंह आयर्रू सर्वखाप पंचायत का राष्ट्रीय पराक्रम , पृ० 196
17. वही पृ० 277
18. रामसिंह साहित्य रतन : 18 खापों का मौलिक इतिहास 2006 ई०, पृ० 18–32
19. नेहाल सिंह आर्य : सर्वखाप पंचायत का राष्ट्रीय पराक्रम , पृ० 127–130
20. गणपति सिंह गुर्जर : वीर वीरांगनाएँ, 1986 ई० ,पृ० 7
21. चौधरी कबुल सिंहरू सर्वखाप पंचायत का मौलिक इतिहास , प्रकाशन काबूल सिंह शोरों मुज्जफ्फरनगर ,पृ० 182
22. वही पृ० 163

48

स्वतंत्रता–संग्राम पर इतिहास लेखन पुरानी एवं नई प्रवृत्तियाँ

***डॉ0 निक्की कुमारी**

आधुनिक भारत (1757–1947) का इतिहास वस्तुतः उपनिवेशवाद की जकड़नों में फँसे एक प्राचीन राष्ट्र के संघर्ष एवं शोषण की दुखद गाथा है। 1885 से 1947 के बीच आजादी का जो संघर्ष लड़ा गया उसके विश्लेषण के संदर्भ में अनेकों प्रश्न उठाये गये मसलन, भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण, किसानों और श्रमिकों की भूमिका, क्रान्तिकारियों की भूमिका आदि। इन प्रश्नों के उत्तर के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया है जिन पर विचार की आवश्यकता है –

उपनिवेशवादी एवं नव–उपनिवेशवादी या नव–परंपरावादी (Colonislist and Neo-Colonialists or Neo-traditionalist)

इतिहास लेखन की उपनिवेशवादी या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रथम परिचय हमें लार्ड डफरिन, कजर्न और मिन्टो जैसे वायसरोक और भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन की राजकीय घोषणाओं के रूप में मिलता है। वैलेन्टाइन शिरॉल, रालट समिति की रिपोर्ट और मॉटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में इसे और तर्कसंगत बनाकर पेश किया गया है। उनके अनुसार उपनिवेशवाद मुख्यतः विदेशी शासन से अधिक कुछ नहीं है। सर जॉन स्ट्रैची[1] (इण्डिया, 1893) और वी0 शिरॉल[2] ('दि इण्डियन अनरेस्ट 1910) इस विचारधारा के इतिहासकार यह नहीं मानते कि राष्ट्रीय आन्दोलन उपनिवेशवाद विरोधी या साम्राज्यवाद विरोधी था। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को 'नकली लड़ाई' मानते है, जो वर्ग हितों या जातिगत संकीर्ण हितों के पोषण के लिए लड़ा गया। वे ब्रिटिश भारत में उपनिवेशवादी राजनीति, सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण भारतीय जनता एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों के केन्द्रीय अर्न्तविरोध को अस्वीकार करते है, फलतः उनका संपूर्ण दृष्टिकोण दूषित हो गया है।

***शोधार्थी (डी.लिट्) इतिहास विभाग मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा (बिहार)**

शिरॉल के अनुसार भारत, एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। उनके मतानुसार कथित राष्ट्रीय आंदोलन वस्तुतः परंपरागत समाज के अभिजन समूहों के द्वारा चलाया जा रहा था तथा इस माध्यम से वे अपने जातिगत हितों की रक्षा करना चाहते थे। सर जॉन स्ट्रेची ने 1884 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भारत पर कई व्याख्यान दिये जिसमें उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है। स्ट्रेची ने अपने छात्रों से कहा था ''भारत नाम का कोई राष्ट्र नहीं था और न ही बनेगा।'' स्ट्रेची ने श्रोताओं को भविष्य के प्रति भी आस्वश्त किया कि भारत के एक राष्ट्र बनाने की आशंका निराधार है।

स्ट्रेची और शिरॉल के दृष्टिकोणों में हम अंतर पाते है। स्ट्रेची पूर्ण रूप से राष्ट्र की संभावनाओं से इन्कार करते है और पुराने उपनिवेशवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते है किन्तु शिरॉल भारत में व्याप्त असंतोष से चिन्तित है लेकिन राष्ट्रवाद के तथ्य को एवं औपनिवेशिक शासन से उत्पन्न विकृत्तियों को अस्वीकार करते हैं तथा भारतीय आंदोलनों को जातिगत हितों एवं वर्गीय स्वार्थों की उपज मानते हुए उपनिवेशवादी शोषण को कुतर्को के झीने आवरण में दँकने की कोशिश करते है।

नव उपनिवेशवादी या साम्राज्यवादी इतिहासकारों के लेखन ने शिरॉल और स्ट्रैची द्वारा प्रतिपादित थीसिस को ही आगे बढ़ाये तथा परिष्कृत करने का प्रयास किया। पर्सिवल स्पियर[3] अनिल शील[4] जे.पी. गौलाधर तथा उनके छात्रों एवं आनुयायियों ने इसे 'निर्लज्जतापूर्वक' अभ्युदय की प्रक्रिया को नकार दिया। इन इतिहासकारों के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था यह आन्दोलन अभिजन समूहों की आवश्यकताओं और हितों की उपज थी।

इस विचारधारा के इतिहासकार ब्रिटिश शासन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए ढाँचागत परिवर्त्तन को स्वीकार नहीं करते हैं। वे मार्क्स के इस तर्क को भी अस्वीकार करते हैं कि आधुनिकीकरण के साथ भारत में परंपरागत संस्थाएँ (यथा जाति और ग्राम समुदाय) छिन्न–भिन्न हो जायेंगे तथा उनके स्थान पर वर्गो तथा राष्ट्रीय समुदायों का उदय होगा। रोडल्फ एवं रोडल्फ लिखते है कि भारत में परंपरागत संस्थाओं का रूपान्तरित करने की सशक्त प्रवृत्ति दिखाई देती है। अतः भारत में तुरंत परंपरागत संस्थाओं को हटाकर आधुनिक संस्थाओं का विकास संभव नहीं है।

प्रो0 रवीन्द्र कुमार[5] ऐतिहासिक शोध के लिए वर्ग की धारणा को उपयोगी मानते है उनके अनुसार वर्ग की धारणा एक सेतु की तरह काम करती है और इतिहासकार की प्रवीणता इस तथ्य में है कि वह किस प्रकार इसको (वर्ग की धारणा) व्यक्ति के जीवन मूल्यों, परिस्थितियों और सामाजिक–सामूहिक हितों के साथ जोड़कर देखता है।मैकली[6] सिर्फ पाश्चात्य शिक्षा को ही एक मात्र कारक तत्व मानते है जिसकी वजह से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उद्भव हुआ। मैकली का मत है कि इस वर्ग (ऊँची जातियों के हिन्दू) के असंतोष और कुंठा ने भारतीय राष्ट्रवाद का बीज बोया। 1880 के दशक में इस

वर्ग की 'बेरोजगारी' काफी बढ़ गई थी, कृषि में अधिक संभावनाएँ नहीं थी,, उद्योग और व्यापार के लिए पूंजी का अभाव था तथा ऊँचे पदों का (सिविल सेवा) का द्वार बंद था। इस आर्थिक विपन्नता की स्थिति में जब उन्होंने रोजगार की माँगे रखी तो ब्रिटिश सरकार ने उसे ठुकरा दिया। इससे असंतोष की आग भड़क उठी। मैकली के तर्कजाल का सबसे बड़ा विरोधामास यह है कि वे ''अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त समुदाय'' को एक वर्ग के रूप में देखते हैं लेकिन इस वर्ग की चेतना के पीछे 'स्वतंत्रता संप्रभुता, लोकतंत्र, मौलिक अधिकार' जैसे आदर्शो की उपस्थिति को अस्वीकार करते हैं।[7]

डॉ0 अनिल शील[8] आर्थिक परिवर्त्तनों को नगण्य मानते हुए बंगाल के अभिजन समूह 'भ्रदलोक' की भूमिका पर जोर देते है, वहाँ दूसरी ओर समाजशास्त्रियों का मत है कि 1793 ई0 के स्थायी बंदोबस्ती के परिणाम स्वरूप पुराना सामाजिक समीकरण बदल गया और नये अभिजन समूह का प्रादुभार्व हुआ जो ब्रिटिश मुखापेक्षी था अन्य इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों के मतानुसार ईस्ट इण्डिया कंपनी के द्वारा किये भू–बंदोबस्तियों के दो महत्वपूर्ण परिणाम हुए जो सम्पूर्ण भारत में एक समान दृष्टिगोचर हुए –

1. ग्राम समुदाय का बिखराव (Disintegration of village community)
2. भूमिपतियों और रैयतों के मध्य नवीन संबंध का जन्म। इस नई व्यवस्था में भूमिपतियों ने सर्वदा उपनिवेशवादी व्यवस्था को समर्थन दिया।

भारत में आधुनिकता के पथ निर्माता राजा राम मोहन राय से महात्मा गाँधी तक सभी नेता पाश्चात्य दर्शन से ही नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों से भी प्रभावित थे। राम मोहन राय तो पाश्चात्य और प्राच्य दोनों संस्कृतियों से अनुप्रमाणित थे। दयानंद सरस्वती जैसे सुधारक तो अंग्रेजी जानते भी नहीं थे।

संस्थागत अवसरों की धारणा के माध्यम से राष्ट्रवाद का विश्लेषण करने वाले विद्वानों में जे.एच. ब्रूमफील्ड भी है। ब्रिमफील्ड[9] के अनुसार 19वीं शाताब्दी के अंतिम चरण में विधायिका संस्थाओं के गठन से नये अवसरों का सृजन हुआ जिसका उपयोग अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग ही कर सकता था। इसके पश्चात ब्रूमफिल्ड अपने विश्लेषण में नये संस्थागत अवसरों में प्रवेश को उपलब्धि के रूप में दर्शाते है साथ ही 'भद्रलोक' के जातिगत बंधनों और नये अवसरों में विरोधाभास की चर्चा भी करते है। 'भद्रलोक' इन नई संस्थाओं का विकास चाहते थे साथ ही समाज के पुराने ढाँचे को कायम रखना चाहते थे। वह व्यवस्था उनके लिए लाभप्रद थी।

ब्रूमफील्ड की अवधारणा की काफी आलोचन हुई है। प्रो0 सुमित सरकार[10] 'भद्रलोक' की अवधारणा को स्वदेशी आन्दोलन के अध्ययन के क्रम में सीमित तौर पर स्वीकारते है। फिर भी इस शब्द की अनिश्चिता गुणवाचकता एवं व्याप्ति के संबंध में अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रो0 सुमित सरकार के अनुसार यह पद इतना व्यापक है कि मैमन सिंह के राजा से लेकर ईस्ट इण्डिन रेलवे का क्लर्क तक इसमें शामिल हो जाता है। इस तरह राजनीतिक आंदोलन के सामाजिक–आर्थिक आधारों के विश्लेषण में इससे

कोई खास मदद नहीं मिलती है। प्रो0 रदरमण्ड[11] के अनुसार प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान शिक्षित अभिजन समूहों में वृद्धि हुई तथा देशी बुर्जुआ वर्ग का तेजी से विकास हुआ जिसके कारण एक विस्तृत 'जन आन्दोलन' का प्रारंभ हुआ।

प्रो0 लो (D.A. Low)[12] के इस विश्लेषण से उनका उपनिवेशवादी सोच स्पष्ट हो जाता है। वे भारत को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने की संभावनाओं वाला क्षेत्र नहीं मानते। इसके अलावा क्षेत्रीयता प्रांतीयता तथा कृत्रिम सामाजिक वर्गीकरण तथा उनके अन्तर्विरोधों को उजागर करते हुए वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के झंडे तले हुए मुक्ति संग्राम की व्यापकता तथा उनके महत्व को घटाकर दिखाना चाहते है।

वस्तुतः उपरोक्त इतिहासकार पूर्वाग्रह से ग्रस्त है तथा अध्ययन के दौरान शासक वर्ग और शासित वर्ग के चरित्र विश्लेषण के लिए दोहरा मापदड अपनाया है। शासक वर्ग को विश्वव्यापी साम्राज्य के स्वामी तथा ब्रिटिश आदर्शों से मुक्त माना गया है। जब कि शासित वर्ग को सदैव अत्यंत क्षुद्र स्वार्थों से प्रेरित तथा आदर्शों से रहित माना गया है। स्पष्टतः इस स्कूल के इतिहासकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे आदर्शों के महत्व से इन्कार कर दिया है। इस संदर्भ में रजत कुमार राय[13] की निम्नांकित पंक्ति उदधृत करने योग्य है ''शासक के लक्षणों को उदार साम्राज्यवादी हितों के साथ जोड़कर दिखाया गया है जबकि भारतीयों को क्षुद्रा तिक्षुद्र स्वार्थों भरा हुआ माना गया है''।

इन इतिहासकारों ने किसानों, श्रमिकों तथा निम्न मध्यम वर्ग के लोगों को 'मानवीय बुद्धि और संवेदनाओं से विहीन मूक–बघिर सदृश' माना है जो अभिजन–समूहों के द्वारा यांत्रिक गति से परिचालित होते थे। इस मत के अनुसार भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास का निर्धारण सरकारी मूलों की श्रृंखला से हुआ। जो नौकरशाही की व्यक्तिगत नासमझी से उत्पन्न हुआ। आज भी ब्रिटिश शासन भारत में कायम रहता यदि अंग्रेजों ने स्थानीय प्रशासन पर कठोर नियंत्रण कायम नहीं किया होता[14] यह बात अपने आप में इतना हास्यस्पद है कि इस पर कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि पुराने उपनिवेशवादी और नव–उपनिवेशवादी इतिहासकारों की विचारधारा में मौलिक समानता है। मोटे तौर पर उन्होंने प्रांतीय जातिय तथा वर्गीय प्रतिस्पर्धाओं को बड़ा–चढ़ाकर दिखाने का प्रयास किया है। उनकी प्रमुख धारणा यह है कि भारत में देशभक्ति संकीर्ण और क्षुद्र भौतिक स्वार्थो की पूर्त्ति के उद्देश्य से अपनाये गये बौद्धिक मुखौटे का प्रतिबिम्ब था। यह एक प्रकार का सनकीपन था लेकिन इसका एक सकारात्मक पक्ष भी है। इससे राष्ट्रवादी ऐतिहासिक चिन्तन में नायक पूजा की प्रवृत्तिपर अंकुश लगने की संभावना बढ़ती है फिर भी हम यह कहना चाहेगे कि किसी आदर्श या विचारधारा और क्षुद्र स्वार्थो के बीच के अंतर एवं पारस्परिक के संबंधों को स्पष्ट समझा जाना चाहिए। ऐसा नहीं करके कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार अपनी कीर्ति को अपकीर्ति में परिवर्त्तित कर रहे है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सर जॉन स्ट्रेची – इण्डिया–टाईनी टोट पब्लिकेशंस, लंदन, 1888, पृ0 सं0–67
2. वी शिरॉल – दि इण्डियन अनरेस्ट, दि स्कौनर पब्लिकेशंस लंदन, 1901, पृ0 सं0–42
3. पर्सिनल स्पीयर – दि हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशंस, लंदन, 1962, पृ0 सं0–37
4. अनिल कुमार शील – दि इमरजेन्स ऑफ मार्डन इण्डिया, कैम्ब्रिज पब्लिकेशंस, लंदन, 1968, पृ0 सं0–65
5. रवीन्द्र कुमार – दि इवेन्ट ऑफ मास पॉलिटिक्स इन इण्डिया, एम0 एस0 पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1972, पृ0 सं0– 25–30
6. मैकली – इंगलिश एजुकेशन एण्ड दि आरिजिनस ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, न्यूयार्क पब्लिकेशंस, न्यूयार्क 1940, पृ0 सं0– 9–14
7. रामकृष्ण मुखर्जी – ट्रेन्ड्स इन इण्डियन सोशियोलॉजी, सेन पब्लिकेशंन 1977, कलकत्ता, पृ0 सं0–101
8. अनिल कुमार शील – पु0उ0, पृ0 सं0– 109
9. ब्रूमफील्ड – इलिट कन्फिलक्ट्स इन एक प्लूरल सोसाइटी ; ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी बंगाल, बर्कल पब्लिकेशंस, लॉस एंजिल्स 1968, पृ0 सं0–208
10. सुमित सरकार – मार्डन इण्डिया, नई दिल्ली 1982 ; स्वेदशी मूवमेन्ट इन बंगाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973, पृ0 सं0– 51
11. डी0 रदरमण्ड – दि फेजेज ऑफ दि इण्डियेन नेशनलिज्म, मधुबन पब्लिकेशंस, बंबई 1970, पृ0 सं0–88
12. डी.ए. लो – (सं.) साउन्डिंग्स ड्न मॉडर्न साउथ एशियन हिस्ट्री, कैत्ब्रिज पब्लिकेशंस, लंदन, 1968, पृ0 सं0–111
13. रजत कुमार राय – थ्री इंटर प्रेटेशन्स ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म इन बी.आर. नंदा (सं0)– एसेज मार्डन इण्डियन हिस्ट्री ओयूपी, शाहनी पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1983, पृ0 सं0–38
14. सर्वपल्ली गोपाल – दि इण्डियन सोशल एण्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री रिव्यू, जुलाई–सितम्बर इशु 14, एम0 एम0 पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1977, पृ0 सं0–91

• • •

49

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता

*कनक लता

जीवन परिचय–

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 ई0 को कलकत्ता में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्रदत्त था। पिता का नाम श्रीमान विश्वनाथ दत्त था तथा माता का नाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी था ।[1] दत्त घराना सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित था, दान पुण्य विद्वता और साथ ही स्वतंत्रता की तीव्र भावना के लिए प्रख्यात था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्त हाईकोर्ट में वकालत करते थे। अंग्रेजी और फारसी भाषा में उनका अधिकार था। बाइगल के अध्ययन में भी वे रस लेते थे और प्रकार संस्कृत शास्त्रों में।[2] उनकी माता भुवनेश्वरी जी राजसी तेजस्वितायुक्त प्रगाढ़ धार्मिकता परायण एक संभ्रात महिला थी। बचपन की प्रारंभिक अवस्था में नरेंन्द्रनाथ बड़े चुलबुले और उत्पाती थे। किंतु साथ ही आध्यात्मिक बातों के प्रति उनका विशेष आर्कषण था। तर्कबुद्धि ऐसी पैनी थी की बचपन में ही लगभग सभी समस्या के लिए वे अकाट्य दलीलों की अपेक्षा किया करते थे। इन सब गुणों के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप नरेन्द्रनाथ का निर्माण हुआ एक परम ओजस्वी नवयुवक के रूप में।[3]

रामकृष्ण देव से मुलाकात

नरेन्द्रनाथ के शरीर की बनावट कसरती युवक की थी। वाणी अनुनाद एवं स्पन्दनपूर्ण तथा बुद्धि अत्यंत कुशागत। खेल–कूद में उनका एक विशेष स्थान था, तथा दार्शनिक अध्ययन एवं संगीतशास्त्र आदि में उनकी प्रवीणता बड़े उच्च स्तर की थी। अपने साथियों के वे निर्द्वन्द्व नेता थे एक ओर उनमें जहाँ आध्यात्मिक्ता के प्रति जन्मजात प्रवृत्ति तथा आदर था, दूसरी ओर उतना ही प्रखर उनका बुद्धियुक्त तार्किक स्वभाव था। इस परिस्थिति में

*व्याख्याता समाजशास्त्र विभाग, बेथेसदा महिला महाविद्यालय झारखंड

उन्होंने ब्रम्हसमाज में कुछ समाधान प्राप्त करने का यत्न किया। इसी क्रम में उनकी मुलाकात श्री रामकृष्ण से हुई। नरेन्द्रनाथ ने उनसे पूछा–महानुभव क्या आपने ईश्वर को देखा है? हाँ मैंने देखा है ठीक ऐसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ। बल्कि तुमसे भी अधिक स्पष्ट और प्रगाढ़ रूप से श्री रामकृष्ण ने दृढ़ता से उत्तर दिया। बड़े प्रसन्न हुए विवेकानंद उनका संशय स्वाहा हो गया, शिष्य की शिक्षा का श्रीगणेश यही से हुआ।

अपनी महासमाधि के तीन चार दिन पूर्व श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्रनाथ को अपनी स्वयं की सारी शक्ति दे डाली और उनसे कह दिया मेरी इस शक्ति से जो तुममें संचारित कर दी है मुम्हारे द्वारा बड़े–बड़े काम होंगे और उसके बाद तुम वहाँ चले जाओगे जहॉ से आए हो। 1888 ई0 के अंत से लेकर 1890 के बीच नरेन्द्रनाथ के दृष्टिकोण में एक जबरजस्त परिवर्तन हुआ क्योंकि प्रारंभ में तो वे थोड़े ही समय के लिए बाहर आते–जाते रहे, परंतु बाद में अपने गुरूभाईयों से विदा लेकर एकमात्र अकेले अज्ञात साधु के रूप में भ्रमण में संलग्न हुए।[4]

अब एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि नरेन्द्रनाथ को यह जागृति हो उठी कि उन्हें जनजीवन निर्माण का एक बड़ा काम करना है। भारत का उन्होंने सम्पूर्ण भ्रमण किया था प्रायः पैदल ही चले थे और इस प्रकार लगभग तीन वर्ष की सेत्त अवधि में उन्हें भारतवर्ष का प्रत्यक्षतः ज्ञान हो गया था। फिर वे समुद्र में उतरे और भारतवर्ष के दक्षिण तट से दूर दिखने वाली एक चट्टान तक तैरते हुए पहुँच गए। वहॉ वे रात भर आसन मुद्र में बैठे रहे और गंभीर ध्यानमग्न हो गए। भारत के संपूर्ण भ्रमन का दृश्य उनकी आँखों के सामने से गुजर गया। उसी क्षण उन्होंने पाश्चात्य देशों में जाने का निर्णय किया जिससे कि वे भारत की निर्धनता निवारण हेतु सहायता प्राप्त करके अपने जीवन के लक्ष्य को रूपान्तरित कर सके।

स्वामी विवेकानंद के उपदेश एवं शिक्षा.

1 विश्वास अपने आप पर विश्वास परमात्मा के उपर विश्वास यही उन्नति करने का एकमात्र उपाय है। जिसमें आत्मविश्वास नहीं वह नास्तिक है। जगत का इतिहास उन थोड़े व्यक्तियों का इतिहास है जिन्हें अपने आप में विश्वास था।[5]

2 तुम जो सोचोगे तुम वही हो जाओगे यदि तुम अपने को दुर्बल समझोगे तो तुम दुर्बल हो जाओगे बलवान सोचोगे तो बलवान बन जाओगे।

3 कार्यसूर और शेर के जैसे दिलवाले को ही लक्ष्मी देवी का अनुग्रह मिलता है।[6]

4 कभी नहीं मत कहना मैं नहीं कर सकता ऐसे कभी न कहना। ऐसा कभी नही हो सकता क्योंकि तुम अनंत स्वरूप हो। तुम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो तुम सर्वशक्तिमान हो।

5 हे मेरे युवा मित्रों तुम बलवान बनो तुम्हारे लिए यही मेरा उपदेश है। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भलिभाँति समझोगे।[7]

6 तुमलोग भी तो कुछ ऐसा करके दिखाओ कि जिससे यह पता चलें कि तुम लोगों में भी कुछ असाधारणत्ता है।[8]
7 उठो खड़े रहो और लड़ो। एक पग भी पीछे न रखो यही भाव है। कायर होकर तुम कुछ भी लाभ नहीं उठाते।
8 जिसे स्वयं सावधान रहना पड़ता है। पग पग पर उसे विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।
9 दुर्बलता का उपचार सदैव उसका चिंतन करते रहना नहीं हैं वरन् बल का चिन्तन करना है।
10 अनंत सहनशीलता रखो जीत तुम्हारी होगी।
11 मेधा शक्ति और शरीर की मांसपेशियों का बल साथ साथ विकसित होना चाहिए सारा संसार तुम्हारे सामने नतमस्तक हो जाएगा।
12 श्रम के बाद विश्राम और विश्राम के बाद श्रम करने से ही भली भॉति कार्य हो सकता है।
13 नकारात्मक भाव फूँक मारकर बिदा कर दो।
14 हमें यह जानना चाहिए कि दूसरे देशों में किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चल रही है और साथ ही साथ मुक्त ह्रदय से दूसरे देशों से विचार विनिमय करते रहना चाहिए।

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता

स्वामी विवेकानंद के संदेशों में भारत के आध्यात्मिक भंडार का सारत्व समाहित है जिसे उन्होंने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक आधार पर सहज सरल शब्दों में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। ये सभी विश्वमानवता के लिए प्रेरणादायी है समाज के सभी वर्ग सभी धर्म एवं सभी जाति के मनुष्यों के लिए समान रूप से उपयोगी है। स्वामी जी के शक्तिशाली प्रोत्साहन वाणी युवकों के मन को जगाने वाली है। आत्मविश्वास एवं जीवन की समस्याओं का सामना करने की शक्ति प्रदान करने वाली उनके ह्रदय में प्रेम एवं सेवाभाव उत्पन्न करनेवाली हमेशा नैतिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करनेवाली एवं जीवन के कठिनाइयों और अनिश्चितता के समय मार्गदर्शन करनेवाली है।[9]

आधुनिक युग में व्यक्तियों की आकांक्षाएं तो ऊँची हो गई है परंतु इनको पूरा करने के लिए न्यायसंगत साधन या तो उपलब्ध नहीं है या उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता। हम राष्ट्रीयता का उपदेश तो देते हैं परंतु जातिवाद भाषावाद और संकीर्णता को अपनाते है कई कानून बनाए गए है। परंतु इन कानूनों में या तो बचाव के कई रास्ते हैं या फिर उन्हें ठीक से लागू नहीं किया जाता। हम समानतावाद की बात करते हैं परंतु पक्षणात का प्रयोग करते है हम आदर्शात्मक संस्कृति की अभिलाषा करते है परंतु वास्तव में जिसका उद्‌भव हो रहा है वह ऐन्द्रियिक संस्कृति। इन सब अंर्तविरोधों से व्यक्तियों में असंतोष और निराशा की भावनाएँ बढ़ी हैं और उनके कारण कई सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।[10]

इन परिस्थितियों में स्वामी विवेकानंद के विचार एवं उनके उपदेश और भी प्रासंगिक हो जाते हैं। स्वामी जी लोगों को स्मृति सीमा से परे होकर सोचने का तरीका बताया है। स्वामी जी के विचारानुसार प्रकृति का द्वार कैसे खटखटाना चाहिए कैसे आघात देना चाहिए केवल यह ज्ञान हो गया तो बस प्रकृति अपना सारा रहस्य खोल देती है उस आघात और तीव्रता की शक्ति एकाग्रता से आती है।[11] मनुष्यों को सही मायने में मनुष्य बनाने वाले अपने धर्म की बदौलत स्वामी विवेकानंद ने भारत के जनसमुदाय को गरीबी और निरक्षरता से उबारा।

स्वामी विवेकानंद मनुष्य के क्रमिक विश्वास को मान्यता देते हैं उन्होंने यह महसूस किया कि खाली पेट वाले लोगों को धर्म की शिक्षा देने का कोई अर्थ नहीं जब तक कि उन्हें पैरों पर खड़ा होने की क्षमता न दी जाए। इसी तरह निष्क्रिय और आलसी लोगों को गहन कर्म में लगाए बिना शांति और संयम के महान गुणों का पाठ पढ़ाना बेकार है। स्वामी जी विचार आधुनिक युवकों को तन एवं मन की शक्ति बढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं। तथा पढ़ाई के साथ–साथ खेलों के महत्व को समझाते हैं। स्वामी जी के विचार श्रम के बाद विश्राम और विश्राम के बाद श्रम मार्ग दर्शन देते हैं।[12] स्वामी जी के विचार थे कि समाज सुधार के लिए प्रथम कर्त्तव्य लोगों को शिक्षित करना। यह शिक्षा नैतिक तथा बौद्धिक दोनों प्रकार की होनी चाहिए। आधुनिक युग में स्वामीजी के यह कथन सत्य ही प्रतित होते हैं, संभव है, कि मैं इस शरीर को एक जीर्ण वस्त्र के समान त्याग कर बाहर आ जाना पसंद करूँ। परंतु मैं कार्य करना बंद करूँगा। मानव को सर्वत्र तब तक प्रेरित करता रहूँगा। जब तक कि संपूर्ण जगत ईश्वर के साथ एकत्व की अनुभुति नहीं कर लेता।[13]

संदर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल जी0 के0, समाजशास्त्र,एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिकेशंस आगरा पृ–257
2. स्वामी ब्रम्हस्थानन्द विवेकानंद राष्ट्र को आह्वान रामकृष्ण मठ नागपुर पृ–1
3 वहीं स्वामी ब्रम्हस्थानन्द विवेकानंद राष्ट्र को आह्वान रामकृष्ण मठ नागपुर पृ–2
4 वहीं स्वामी ब्रम्हस्थानन्द विवेकानंद राष्ट्र को आह्वान रामकृष्ण मठ नागपुर पृ–5
5 स्वामी निखिलानन्द विवेकानंद एक जीवनी अद्वैत आश्रम प्रकाशन विभाग कोलकाता पृ–311
6 शर्मा ए0 आर0 के0 नेतृत्व सूत्र श्री शारदा बुक हाउस विजयवाड़ा पृ–29
7 स्वामी विवेकानंद व्यक्तित्व का विकास रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन बेलुरमठ पृ–37
8 शर्मा ए0 आर0 के0 स्मृति सीमा से परे होकर सोचने का तरीका श्री शारदा बुक हाउस विजयवाड़ा
9 स्वामी विवेकानंद व्यक्तित्व का विकास रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन बेलुरमठ पृ–3
10 आहुजा राम सामाजिक समस्याएँ रावत पब्लिकेशन्स जयपुर पृ–24,25
11 शर्मा ए0 आर0 के0 स्मृति सीमा से परे होकर सोचने का तरीका श्री शारदा बुक हाउस विजयवाड़ा पृ–8
12 वही पृ–159
13 स्वामी विवेकानंद नया भारत गढ़ो रामकृष्ण मठ नागपुर वही पृ–24

50
ऐतिहासिक स्थल 'चंदेरी' एवं वहाँ का हथकरघा उद्योग

***डॉ. रीता जायसवाल**

हथकरघा उद्योश देश की संस्कृति एवं धरोहर को बनाए रखने में चीन की दीवार के समकक्ष रहा हैं यह उद्योग पम्परागत एवं कलात्मक वस्त्रों के उत्पादन के साथ, प्रदेश के बुनकरों को रोजगार उपलब्ध कराता है। अतः देश की अर्थव्यवस्था में इसकी महती भूमिका है। 65 लाख लोगों को रोजगार देने वाले हथकरघा उद्योग का कृषि के पश्चात् दूसरा स्थान हैं यह लगभग 6 अरब 20 करोड़ वर्गमीटर कपड़े का उत्पादन करता है और यदि निर्यात की बात की जाये तो सन् 2006 में लगभग इस क्षेत्र ने 40 अरब रूपये की विदेशी मुद्रा कमाई थी।

एक आंकलन के अनुसार वर्तमान में लगभग 1/2 करोड़ से भी अधिक लोग इस क्षेत्र में कार्यरत् है वर्ष 1995–96 के अनुसार इस क्षेत्र में 65.51 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त है जिसमें 32.27 लाख महिलाएँ शामिल है। इस क्षेत्र में अंशकालिक बुनकर के रूप में 71 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत् है। पूर्व की तुलना में करघों की संख्या में भी लगातार वृद्धि हुई है जैसे वर्ष 2004–05 में कुल 34.5 हजार स्थापित करघा में से 20.8 हजार करघे कार्यशील रहे। इस प्रकार हथकरघा उद्योग के विकास की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

चंदेरी हथकरघा का हथकरघा उद्योग में विशेष योगदान रहा है। 1991–92 में चंदेरी में 2500 करघे सक्रिय थे जिनसे लगभग 10 करोड़ का उत्पादन किया गया था एवं 1 करघे से प्रतिमाह औसतन 6 साड़ियां तैयार की जाती थीं, वर्ष 2002–03 में करघों की संख्या 3659 थी जिनसे वार्षिक उत्पादन 14.40 करोड़ रूपये का हुआ।

उसताद बुनकरों के अनुसार प्रतिमाह यहाँ के बनुकर 40000.00 साड़ियाँ बुनते है। सकल व कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक साड़ियाँ ही है। वर्ष (2007–08) में

***प्राध्यापक अर्थशास्त्र सरोजनी नायडू शासकीय कन्या महाविद्यालय शिवाजी नगर, भोपाल (मध्य प्रदेश)**

चंदेरी में स्थापित करघे 3729, कार्यशील करघे 3377, सरकारी क्षेत्र में 1296, करघे गैर सरकारी क्षेत्र में 2033, करघों बुनाई कर रहे है। 10131, बनुकर यहॉ कार्यरत् है। सहकारी समितियों की संख्या 13 मास्टर वीवर्स 56 तथा 1 क्लस्टर क्लब यहाँ स्थित है। 9987 लोगों को इससे सीधा रोजगार प्राप्त हो रहा है। यहाँ के वस्त्र व्यवसाय का सालाना टर्न ओवर 20.00 करोड़ रूपये है।[1]

हथकरघा उद्योग एवं चंदेरी हथकरघा के विकास हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ संचालित की गई है किन्तु इसके बावजूद भी इस क्षेत्र में न केवल बनुकरों की संख्या में कमी आई है बल्कि कार्यशील करघों की संख्या एवं माँग भी पिछले कुछ वर्षों में घटी है लेकिन चूँकि वर्तमान में भौतिक उतार–चढ़ाव के कारण अर्थव्यवस्था में हथकरघा एवं चंदेरी हथकरघा अधिक सहायता पहुँचाता हैं इसलिये दीर्घकालीन विकास की दृष्टि से इस उद्योग को जीवित रखना आवश्यक है।[2]

प्रस्तुत लेख में इस महत्वपूर्ण उद्योग की एतिहासिक व आर्थिक स्थिति को जानने का प्रयास किया गया है। तथा चन्देरी हथकरघा से जुड़ी समस्याओं को जानने तथा समाधान हेतु उपायो को भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. हथकरघा उद्योग में चंदेरी हथकरघा के निरंतर बढ़ते प्रभुत्व एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करना।
2. चंदेरी हथकरघा की आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करना।
3. चंदेरी हथकरघा में व्याप्त समस्याओं के कारणों की जानकारी प्राप्त करना।
4. समस्याओं के निराकरण हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन क्षेत्रः

अध्ययन क्षेत्र हेतु म.प्र. के चंदेरी (जिला अशोक नगर) का चयन किया गया है। ,

चंदेरी का सामान्य परिचयः

चंदेरी मध्यप्रदेश में अशोकनगर जिले की तहसील है। यह नगर विंध्याचल की अण्डाकार पहाड़ियों के मध्य है। यहाँ की आबादी लगभग 29000 है।

चंदेरी नगर वर्णन महाभारत काल में वर्णित 18 जनपदों में से एक ''चेदि'' के रूप में किया गया है उस समय यहाँ के शासक राजाशिशुपाल थे पूर्व में चंदेरी का वर्णन ''चेंदि और कभी'' ''चन्द्रगिरि'' के नाम से किया गया है।

इस ऐतिहासिक नगरी पर कभी राजा शिशुपाल का शासन रहा तो कभी प्रतिहार

वंश गुलाम वंश, कभी मालवा के गौरी एवं खिजली वंश का शासन रहा। इसके अतिरिक्त अफगान वंश, बुंदेला राजपूत और सिंधिया राजघराना भी इसके प्रमुख शासक रहे।

चंदेरी को पर्यटन मानचित्र में प्रदेश की हृदयस्थली कहा गया है क्योंकि यह हिन्दू, मुस्लिम व जैन सभ्यताओं का संगम है। यह नगर प्राचीन काल में दिल्ली से दक्षिण भारत की ओर जाने वाले मुख्य मार्ग पर स्थित था। जिसके कारण यह सदैव उत्तर से दक्षिण की विजय यात्रा का लक्ष्य रहा। चंदेरी का वर्णन अलबरूणि ने अपनी पुस्तक ''किताबुल हिन्द'' में भी किया है।

1021 ई. में महमूद ग़जनवी के समक्ष राजा कीर्तिपाल के आत्मसमर्पण के बाद 1251 में बलबन ने चंदेरी को अपने अधिकार में ले लिया। किन्तु कुछ समय पश्चात् यह चंदेलों के अधिकार में आ गया। 1304 व 1309 में खिलजी वंश के दो सेनापतियों ने इस पर कब्जा किया। सन् 1438 में मालवा के सुल्तान, 1509 में बजीर मेदनीराय ने इस पर अधिकार जमाया। सन् 1528 में बाबर ने इसे मेदनीराय से जीत लिया। राजा अकबर द्वारा जब मालवा पर विजय प्राप्त की गई तब चंदेरी स्वतः ही मुगलवंश के अधीन हो गया।

सन् 1606ई. तक यह मुगलकाल का हिस्सा रहा किन्तु 1857 में अंग्रेजो के आधिपत्य में आया सन् 1860 में परिहार की संधि के द्वारा चंदेरी को सिंधिया राज्य के सुपुर्द कर दिया गया तब से 1947 तक यह सिंधिया राजघराने के अधीन रहा।[3]

चंदेरी का वस्त्रोद्योग–

चंदेरी नगर एक ओर जहाँ ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से प्रसिद्ध है वहीं दूसरी और यह अपने कलात्मक एवं महीन वस्त्रोत्पादन के लिये भी प्रसिद्ध हैं चंदेरी के वस्त्रोद्योग का प्रमाणिक इतिहास मुगलकाल से मिलता है।

इब्नबतूता द्वारा चंदेरी वस्त्रोद्योग एवं इसके भरे–पूरे बाजार का उल्लेख किया गया था जो कि यह साबित करता है कि चंदेरी उस काल में एक व्यवसायिक नगर रहा होगा। मुगल बादशाह अकबर ने शासनकाल में वस्त्रोद्योग का कॉफी विकास हुआ।

चंदेरी के साथ ही महेश्वर भी वस्त्र निर्माण का प्रमुख क्षेत्र रहा। यहाँ सूती वस्त्रोत्पादन हुआ करता था एवं सोने, चाँदी के तारों से युक्त वस्त्रों का निर्यात भी किया जाता था। शाहजहाँ के शासनकाल में चंदेरी से सालाना 11,86,388 दिरहम (लगभग 22,000,000) का राजस्व राजकोष में जाता था।

मुगल बादशाँह बहादुर शाह के शासन काल में चंदेरी से प्राप्त होने वाले राजस्व में 4.50 लाख रूपये सालाना कमी हुई किन्तु बुंदेला शासकों के संरक्षण से चंदेरी में वस्त्रोत्पादन निरंतर वृद्धि होती गई। चंदेरी के वस्त्रोद्योग का अधिक स्पष्ट वर्णन 1857 में आर.सी. स्टर्नले द्वारा प्रस्तुत (अप्रकाशित) दस्तावेज से प्राप्त होता है उनके अनुसार ''चंदेरी बहुत बारीक मलमल के कपड़े बनाने का प्रसिद्ध स्थान था वहाँ के निर्मित कपड़े अपर इंडिया और दक्षिण राजाओं एवं सामंतों की स्त्रियों को बहुत पसंद थे, यद्यपि

उत्पादन बहुत कम हो चुका था फिर भी लोग इसमें व्यस्त थे, उत्पादन का सामान बहुत महंगा था, धोती के एक जोड़े की कीमत 800 रूपये से 1000 रूपये तक है और कभी–कभी तो इससे भी अधिक है। कपड़े की सुन्दरता इसकी बारीकी, कोमलता और पारदर्शिता से पहचानी जाती है, परन्तु किराने प्रायः सोने के धागे से भारी बनाए जाते थे''।

चंदेरी हथकरघा का आर्थिक सर्वेक्षणः

चंदेरी की अर्थव्यवस्था मुख्यतः 5 स्त्रोतों (श्वेत वस्त्र वेतन भोगी कर्मचारियों, कृषि विपणन, खदान, बीड़ी धंध एवं वस्त्रोद्योग (साड़ी) में से चंदेरी साड़ी पर निर्भर हैं चूँकि चंदेरी की संपूर्ण संरचना इसी उद्योग पर निर्भर है। अतः चंदेरी का महत्व एवं बर्चस्व पूरे देश पर छाया हुआ है एवं यहाँ की आबादी जो कि 30000 है में से लगभग 10000 बुनकर इसमें सीधे तौर पर जुड़े हुए है अतः कहा जा सकता है जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग इसी उद्योग पर निर्भर है।

5 दिसम्बर 1910 में कारीगरों एवं गैर कारीगरों के बच्चों को प्रशिक्षण देने हेतु टैक्सटाईल संस्थान की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत 400 लोगों को 6 माह का प्रशिक्षण एवं 250 रूपये की राशि दी जाती थी। 2002–03 में इसमें केवल 8 प्रशिक्षणार्थी ही शेष थे। इस संस्थान द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को कच्चा माल, रोलिंग करना, रंगाई, बुनाई एवं डिजाईन आदि प्रदान की जाती है। प्रशिक्षणार्थी के पास यदि प्रशिक्षण प्राप्ति के पश्चात् करघे नहीं होते है तो वह बड़े बुनकरों के घर में काम करते है एवं कच्चा माल यदि कम है तो इसकी कमी मास्टर बुनकरों द्वारा पूरी कर दी जाती है। इस प्रकार संस्थानों में प्रशिक्षण प्राप्त बुनकरों को रोजगार की प्राप्ति सरलता से हो जाती है।

11 सितम्बर 1994 में चंदेरी कपड़ा संस्थान का पुर्नगठन किया गया एवं साथ ही उद्देश्यों में भी बदलाव किए गए जैसे चंदेरी के बुनकरों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना इसका एकमात्र प्रमुख उद्देश्य रखा गया। चंदेरी हथकरघा में पुर्नगठन हेतु ग्वालियर दरबार ने 1 रूपये की राशि एवं बुनकरों को वापिस इस उद्योग में लाने हेतु 2000 रूपये की राशि स्वीकृत की इससे न केवल लाभों में वृद्धि हुई बल्कि बुनकरों के पारिश्रमिक में भी वृद्धि हुई।[4]

1975 में जब ताने में 20–22 डेनियर एवं बाने में 16–18 डेनियर कोरियन रेशन का प्रयोग प्रारंभ हुआ तो इसकी माँग में इतनी वृद्धि हुई कि कई जगहों पर कुछ बुनकरों ने इनकी नकल करके साड़िया बेचना प्रारंभ कर दिया। वर्तमान में मास्टर बुनकरों के अनुसार एक माह में 40 हजार साड़िया बुनी जाती है जो उसकी माँग से काफी कम हैं लेकिन फिर भी दुकानों पर इनकी पूर्ति बराबर हो रही है अतः स्पष्ट है कि इनकी नकल की जा रही है।

1979 में चंदेरी में 1045 करघे थे जिसमें से 756 पर मास्टर बुनकर व व्यापारियों

का स्वामित्व था एवं 45 करघों पर बुनकर सहकारी समिति का स्वामित्व था एवं शेष करघे निजी स्वामित्व के अन्तर्गत थे। इन करघों में से भी मात्र 600 करघे एक साल में 300 दिनों के लिए ही सक्रिय थे। 229 करघे 200 दिन के लिए सक्रिय थे और 100 करघे पूरे या 100 दिन के लिए सक्रिय थे। इस समय कुल वार्षिक उत्पादन 3,30,000/– मीटर था जिसका मूल्य 45,00,000 रूपये था।

1979 में ही 523 परिवार 929 करघों पर कार्यरत् थे। इनमें 1 बुनकर की आय प्रतिमाह 125–150 रूपये थी एवं आश्चर्यजनक तथ्य यह था कि 287 बुनकर परिवार मास्टर बुनकरों के ऋणों के भार से दबे हुए थे। यह ऋण 4,00,000/– रूपये का था और प्रति परिवार 1400 रूपये का कर्ज था। इसके लिए सरकार द्वारा इन्हें सहायता तो प्रदान की गई किन्तु वह पर्याप्त नहीं थी।

लाहिरी रिपोर्ट 1979 के अनुसार इस समय चंदेरी बुनकरों की स्थिति काफी खराब हो चुकी थी। वे ऋणों के भार से दब गए थे केवल 125–150 रूपये उनके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं थे अतः ये बुनकर वस्त्रोत्पादन को छोड़कर अन्य धंधों की ओर जैसे मत्स्य पालन आदि की ओर आकर्षित हुए।

बुनकर सहकारी महासंघ मध्यप्रदेश हस्तकला निगम और मध्यप्रदेश लघु उद्योग निगम के द्वारा 5 प्रतिशत सेवा शुल्क बुनकर सहकारी समितियों को दिया जाने लगा। ये समितियाँ बुनकरों की सहायता हेतु निर्मित की गई थी। इस समिति को 1991–92 में नाबार्ड द्वारा 1 लाख रूपये की सहायता दी गई थी। इस सहायता के पश्चात् 1991–92 में सहकारी समिति की वित्तीय स्थिति को निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है।

1991–92 में बुनकर सहकारी समिति की वित्तीय स्थिति

क्र.	पूँजी की रूपेरखा	राशि (रूपये में)
1.	सदस्यों द्वारा शेयर पूँजी	56,613.00
2.	शासन द्वारा शेयर पूँजी	1,00,000.00
3.	आरक्षित निधि ऋण	87,169.00
4.	पूँजी के अन्य स्त्रोत	1,120,524.00
5.	शासकीय ऋण	22,180.00
	कुल पूँजी	13,86,486.00

स्त्रोत– टैक्सटाइल मिल चंदेरी में उपलब्ध रिकार्ड के आधार पर

उपरोक्त तालिका में बुनकर सहकारी समिति की वित्तीय स्थिति 1991–92 के संदर्भ में प्रदर्शित की गई है। इसमें शासन द्वारा लगाई शेयर पूॅजी 1,00,000/– है एवं सर्वाधिक पूँजी अन्य स्त्रोतों की सहायता से 11,20,624 प्राप्त की गई। इसके अतिरिक्त

शासकीय ऋण 22,180 रूपये तथा आरक्षित निधि ऋण 87,169 रूपये है। इसी प्रकार समिति के सदस्यों द्वारा लगाई गई शेयर पूँजी 56,613 रूपये है।[5]

प्रस्तुत तालिका के अनुसार कुल पूँजी राशि 13,86,486 रूपये था जो कि पर्याप्त किन्तु इसके बावजूद चंदेरी के बुनकरों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ किन्तु अब बाजार विस्तृतीकरण एवं उत्पादन में वृद्धि के कारण बुनकर अब कुछ बेहतर अवस्था में हैं। अब अधिकतर बुनकर सहकारी समितियों के सदस्य है। हथकरघे पर 50 प्रतिशत की रियायत के अलावा इन्हें पूँजी से 9 गुना अधिक ऋण प्रदान करती है जैसे यदि उनका शेयर 100 रूपये है तो उन्हें 900 रूपये ऋण प्राप्त होता है।[6]

1993–94 में 9 बुनकर समितियाँ थी इनमें सबसे प्रमुख समिति बुनकर सहकारी समिति मर्यादित चंदेरी है इसकी स्थापना 1964 में हुई थी इसकी सदस्य संख्या को निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है।

बुनकर सहकारी समिति मर्यादित चंदेरी की विभिन्न वर्षों में सदस्यों की संख्या का विवरण

क्र.	वर्ष	सदस्य संख्या
1.	1946-47	91
2.	1970-71	500
3.	1978-79	90
4.	1991-92	552

स्त्रोत– टैक्सटाइल मिल चंदेरी में उपलब्ध रिकार्ड के आधार पर

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट हो रहा है कि 1946 में जहाँ समिति के सदस्यों की संख्या 91 थी ये बढ़कर 1970 में 500 हो गई लेकिन एक बार फिर सदस्यों की संख्या 1979 में कमी आई और सदस्य संख्या 90 हो गई किन्तु सहकारी सहायता के बलबूते इसमें पुनः 1991–92 में वृद्धि होकर सदस्य संख्या 552 हो गई।

विभिन्न सहकारी समितियाँ साड़ी विक्रय कर पाने में कठिनाई का अनुभव कर रही थी क्योंकि सार्वजनिक संस्थाओं के द्वारा साड़ी की खरीद 1990–91 और 1991–92 में बहुत घट गई थी। कई सदस्यों ने समिति के लिए वस्त्र बुनना बंद कर दिया और अपना स्वतंत्र व्यवसाय खोल लिया और इसी समयावधि में केन्द्रीय रेशम बोर्ड, बम्बई ने रेशमी धागे के मासिक प्रेषण की योजना को भी बंद कर दिया। अतः समस्याएँ बहुत अधिक बढ़ गई थी।[7]

चन्देरी हथकरघा की प्रमुख समस्याएँ

1. हथकरघा उत्पाद के विपणन की समस्या।
2. प्रशिक्षण संबंधी समस्या।
3. ऋणग्रस्तता की समस्या।
4. प्रवेश कर में छूट संबंधी समस्या।
5. आवास एवं स्वास्थ्य की समस्या।
6. सरकार द्वारा चलित योजनाओं की जानकारी का अभाव।[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एम. खॉन, जून 2008, मध्यप्रदेश संदेश, चंदेरी की वस्त्र परम्परा और उसका संरक्षण। पृष्ठ क्र. 34 से 37
2. बी. श्यामा सुंदरी, जुलाई 2007, योजना पत्रिका, हथकरघा विपरणनः एक नवीन दृष्टि। पृष्ठ क्र. 11 से 16
3. पूनम बीर कस्तूरी, जुलाई 2007,योजना पत्रिका, सूत–सूत बुनी कहानी। पृष्ठ क्र. 17 से 24
4. सविता मोदक, जुलाई 2007,योजना पत्रिका, फैब इंडिया, गुणवत्ता का दर्शन। पृष्ठ क्र. 25 से 26
5. देवेन्द्र उपाध्याय, जुलाई 2007, योजना पत्रिका, बुनकरों को विपणन प्रोत्साहन। पृष्ठ क्र. 27 से 36
6. हथकरघा संचालनालय म.प्र., वर्ष 2009–10 कार्य योजना प्रस्ताव।
7. जनसंपर्क कार्यालय जिला अशोक नगर म.प्र., चंदेरी हथकरघा उद्योग।
8. ब्रिजेन्द्र शर्मा, चंदेरी का इतिहास, जिला अशोक नगर की महत्वपूर्ण जानकारी